।।ओ३म्।।

पाक्षिक

परोपकारी

• वर्ष ६० • अंक ८ • मूल्य ₹१५ महर्षि दयानन्द की स्थानापन्न परोपकारिणी सभा का मुखपत्र • अप्रैल (द्वितीय) २०१८

महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रति गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा श्रद्धाञ्जलि के रूप में लिखा गया पत्र

I offer my homage of veneration to Swami Dayananda, the great path-maker in modern India, who through bewildering tangles of creeds and practices – the dense undergrowth of the degenerate days of our country – cleared a straight path that was meant to lead the Hindus to a simple and rational life of devotion to God and service for man. With a clear-sighted vision of truth and courage of determination he preached and worked for our self-respect and vigorous awakenment of mind that could strive for a harmonious adjustment with the progressive spirit of the modern age and at the same time keep in perfect touch with that glorious past of India when it revealed its personality in freedom of thought and action, in an unclouded radiance of spiritual realisation.

Rabindranath Tagore

July 15. 1933

Santiniketan

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुख पत्र

वर्ष : ६० अंक : ०८

दयानन्दाब्द: १९४

विक्रम संवत्: वैशाख शुक्ल २०७५

कलि संवत्: ५११९

सृष्टि संवत्: १,९६,०८,५३,११९

सम्पादक

डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

प्रकाशक-परोपकारिणी सभा,
केसरगंज, अजमेर- ३०५००१
दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

मुद्रक-श्री मोहनलाल तँवर
वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।
दूरभाष : ०१४५-२४६०८३१

परोपकारी का शुल्क

भारत में

वार्षिक-२०० रु., द्विवार्षिक-३९० रु.
त्रिवार्षिक-५८० रु.
आजीवन (१५ वर्ष)-२००० रु.
एक प्रति - १५/- रु.

विदेश में

वार्षिक-५० यू.के. पाउण्ड/८० यू.एस.डॉलर
द्विवार्षिक-९५ पाउण्ड/१५२ डॉलर
त्रिवार्षिक-१४० पाउण्ड/२२५ डॉलर
आजीवन (१५वर्ष)-५००पा./८०० डॉ.
एक प्रति - ३ पाउण्ड
एक प्रति - ४ डॉलर

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०
ऋषि उद्यान : ०१४५-२६२११७०

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

अप्रैल द्वितीय २०१८

अनुक्रम

०१.	अल्पसंख्यकवाद के दुष्प्रभाव	सम्पादकीय	०४
०२.	मृत्यु सूक्त-४	डॉ. धर्मवीर	०७
०३.	कुछ तड़प-कुछ झड़प	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	१०
०४.	विद्ययाऽमृतश्नुते	तपेन्द्र वेदालङ्कार	१६
०५.	धन का डाह	पं. गुरुदत्त विद्यार्थी	२०
०६.	वैदिक पुस्तकालय के नये संस्करण		२८
०७.	महात्मा हंसराज	डॉ. सुरेन्द्र कुमार	३०
०८.	शङ्का समाधान- २३	डॉ. वेदपाल	३२
०९.	पं. पद्मसिंह शर्मा	वेदप्रकाश 'विद्यार्थी'	३६
१०.	पाठकों की प्रतिक्रिया		३८
११	गौतम बुद्ध और वेद	डॉ. ज्वलन्त कुमार	३९
१२.	संस्था-समाचार		४१
१३.	आर्यजगत् के समाचार		४२

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com → Daily Pravachan

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

अल्पसंख्यकवाद के दुष्प्रभाव

भारतीय राष्ट्रीय राजनीति का यह अभिशाप ही रहा कि स्वतन्त्रता से पूर्व ही भारत ने तुष्टीकरण की विभिन्न विधाओं को जन्म दे दिया। ब्रिटिश राज की यह सोची-समझी चाल थी कि इस बहुलतावादी देश में छोटे-छोटे समुदायों को धार्मिक, जातिगत, भाषायी, रहन-सहन, रीति-रिवाज इत्यादि के विषय में एक-दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर दिया जाए और फिर वे आपस के समझौते के न्याय के लिए ब्रिटिशराज की शरण में आएँ। दुर्भाग्य से स्वतन्त्रता के बाद यह षड्यन्त्र नीति और अधिक प्रसारित होने लगी जिसने सबसे अधिक राजनीति को प्रभावित किया, समाज में विद्वेष की भावना उत्पन्न की, सामाजिक समरसता के भाव को विच्छिन्न करने का अल्पसंख्यकवाद की नीति ने खुला खेल खेला।

अभी हाल ही में कर्नाटक की सिद्धारमैय्या सरकार ने लिंगायतों को हिन्दू धर्म से पृथक् मानकर अल्पसंख्यक का दर्जा देने का प्रस्ताव पारित कर उन्हें अल्पसंख्यक घोषित करने की संस्तुति केन्द्र सरकार से की है। यहाँ केवल आगामी चुनावों को दृष्टिगत रखते हुए ही स्वतन्त्रता के बाद कांग्रेस ने विभाजन के दुश्चक्र का खेल खेला जिसमें हिन्दुओं को ही विभाजित कर अल्पसंख्यकों की एक नई श्रेणी उत्पन्न की जा रही है। ध्यातव्य है कि संविधान सभा में भी इस विषय पर सरदार वल्लभभाई पटेल की रिपोर्ट पर विस्तृत चर्चा की गई थी। यहाँ तक कि संविधान सभा में मुस्लिम प्रतिनिधि तजामुल हुसैन तक ने यह कह दिया था कि भारत में यह **अल्पसंख्यक** शब्द स्वीकार्य नहीं हो सकता। लेकिन 1947 के बाद यह अल्पसंख्यकवाद तुष्टीकरण के नये चोले में नवबौद्धिकों के समक्ष जिस रूप में परोसा गया है वह भारतीय धार्मिक विचारधारा और संस्कृति से मेल नहीं खाता।

भारत का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि भारतीय संस्कृति के सतत प्रवाह में अनेक वैचारिक विभिन्नताएँ पल्लवित और पुष्पित हुईं और किसी ने केवल विचारधारा के आधार पर अपने को असुरक्षित मानकर विशेष अधिकारों की मांग नहीं की। भारतीय भूमि में जन्मे जैन, बौद्ध, चार्वाक, शैव, वैष्णव, शाक्त, नयनार, आलवार, बाउल, लिंगायत, इत्यादि केवल धार्मिक विचारधाराएं मानी गईं जिनसे मानव अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। परस्पर जोरदार शास्त्रार्थ भी किए गए, एक-दूसरे के विरुद्ध कटु लेखन भी किया गया और कहीं-कहीं कालान्तर में कुछ राजसत्ताओं की ओर से संरक्षण भी दिया गया। फिर भी किसी ने समाज को बहुसंख्यकवाद और अल्पसंख्यकवाद की कोटि में नहीं रखा था। इसलिए भारतीय संस्कृति के तन्तु ने संपूर्ण समाज को एकसूत्र में आबद्ध रखा और सभी सामाजिक घटक अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में निरन्तर संलग्न रहे।

भारत के संविधान में जिस अपरिभाषित **अल्पसंख्यक** शब्द को प्रयुक्त कर मुस्लिम, सिख, ईसाई इत्यादि को जो दर्जा दिया गया, वह राजनीतिक नफे-नुकसान के लिए नहीं था, लेकिन अब विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए संविधान प्रदत्त सार्वभौमिक मूल सिद्धान्त के विरुद्ध जाकर इसे वोट बैंक की राजनीति से जोड़ती ही नहीं हैं, अपितु उसे पोषित भी करती हैं अर्थात् भड़काती और उकसाती हैं और साथ ही इसे समाज के लिए अपनी महान् उपलब्धि बताकर स्वयं को भी महान् घोषित किया जाता है। परिणामस्वरूप समाज में विद्वेष की आग प्रवाहित होने लगती है। 1978 में भारत सरकार ने अल्पसंख्यक आयोग का गठन किया था। बाद में संसद द्वारा राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम 1992 पारित कर 1993 में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग गठित हुआ, जिसमें मुस्लिम, सिख, ईसाई, बौद्ध एवं पारसी को धार्मिक आधार पर अल्पसंख्यक घोषित किया गया था। बाद में संप्रग शासन में जैन धर्म को भी इसमें जोड़ा गया।

कर्नाटक सरकार ने जिस प्रकार राज्य अल्पसंख्यक आयोग की सिफारिश पर लिंगायतों को हिन्दू धर्म से पृथक् कर उन्हें अल्पसंख्यक घोषित करने का दुस्साहस किया है यही इस तथ्य को उजागर करता है कि संपूर्ण भारत में इसके विरुद्ध किसी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं हुई। हिन्दुओं ने इसे हिन्दू धर्म पर आक्रमण स्वीकार नहीं किया। उन्होंने

इसके दूरगामी परिणामों पर विचार भी नहीं किया। इसे राजनीतिक सोच मानकर हिन्दू धर्मावलम्बी इसे विघटनकारी घटना ही स्वीकार नहीं करते। लगता है कर्नाटक का हिन्दू और शेष भारत का हिन्दू बहुत दूर के लोग हैं। क्या पूजा और पद्धति के आधार पर और हिन्दू धर्म के सामान्य भेदों के आधार पर अल्पसंख्यक समूह का गठन करना समीचीन होगा? क्या राजनीतिक पार्टियां भारत के सांस्कृतिक ताने-बाने को छिन्न-भिन्न करने के लिए सन्नद्ध होती रहेंगी? यही विचारणीय प्रश्न है। क्या इसी आधार पर रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट को पृथक् ईसाई माना जाना चाहिए? और इसी तरह शिया, सुन्नी, बहावी, कादयानी इत्यादि को इस्लाम से पृथक् कर देना चाहिए? सिखों और जैनियों में भी ऐसे भेद हैं।

सामान्यत: हिन्दू धर्म की यह विशेषता रही है कि वह कभी भी इस्लाम या ईसाई मत के समान संस्थाबद्ध होकर नहीं रहा। सतत चिन्तन और सृजनशीलता हिन्दू धर्म की मूलभूत विशेषता रही है। डॉ. राधाकृष्णन् ने इसे **आ नो भद्रा:** की भावना के अनुरूप सभी शाश्वत विचारों को ग्रहण करने की क्षमता के रूप में अभिहित किया है। यह सत्य है कि सभी सम्प्रदाय और मत अपने विश्वासों, मान्यताओं, धर्मग्रन्थ और उपासना की पद्धतियों में भिन्नता रखते हैं। परन्तु मूल स्वर सभी सम्प्रदायों का एक ही माना जा सकता है और वह है मानव की दु:खों से निवृत्ति और परमसत्ता के प्रति मानव को कृपा का आकांक्षी बनाना। विश्व में हिन्दू धर्म संख्या के दृष्टिकोण से देखा जाए तो तीसरे स्थान पर आता है, फिर भी हिन्दू धर्म ने कभी भी उस प्रकार से राजनीतिक या आर्थिक या युद्ध के द्वारा धर्म विस्तार की नीति का अवलम्बन नहीं किया। भारतीय भूमि में जन्मे जैन और बौद्ध मतों को भी देखा जाए तो उन्होंने भी इस नीति को कभी भी स्वीकार नहीं किया। उनका तो मूलभूत आधार ही अहिंसा, वैराग्य तथा अपरिग्रह की भावना है। सामान्यत: भारतीय भूमि तो इस भाव को स्वीकार करती है- **''जात पाँत पूछे नहीं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।''**

अल्पसंख्यकवाद की जिस दुन्दुभि को बजाकर विगत 70 वर्षों में भारत में वोट की राजनीति चलती रही, उसने बहुत अच्छे परिणाम नहीं दिए हैं, क्योंकि कभी भी संरक्षणवाद की नीति सार्थक नहीं रही है। संविधान-सभा में इसीलिए एच.सी. मुखर्जी ने कहा था कि यदि हम एक राष्ट्र चाहते हैं तो मजहब के आधार पर अल्पसंख्यक मान्यता को प्रदान नहीं कर सकते। क्योंकि राष्ट्र में अल्पसंख्यक की संज्ञा से राष्ट्र का सार्वभौमिक स्वरूप पल्लवित और पुष्पित होने में विसंवादी स्वर उपजते रहते हैं। **जिस संरक्षणवाद के आधार पर अंग्रेजों ने अपने राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति की, क्या स्वतन्त्रता के बाद भारत को वह स्वीकार करना चाहिए? यह चिन्ता का विषय है।** मूल्य-आधारित जीवनपद्धति और लोकतान्त्रिक मान्यताएँ लोकतन्त्र के लिए कभी चुनौती नहीं बनतीं।

आज युवा जनमानस का राजनीतिक चुनावी प्रक्रिया और लोकतान्त्रिक संस्थाओं से मोह भंग हो रहा है। संवैधानिक संस्थाओं का प्रयोग जिस प्रकार विगत अवधियों में हुआ है वह युवाओं के सक्रिय राजनीति से अलगाव को दर्शाता है। यह सत्य है कि लोकतन्त्र बहुमत के आधार पर चलता है और यह बहुमत कभी जाति के आधार पर, कभी क्षेत्र के आधार पर और कभी सुविधाओं के आधार पर स्वीकार कर चुनाव को किसी भी स्थिति में जीतने की प्रतिबद्धता ही एक प्रकार से अल्पसंख्यकवाद की विचारणा को स्पष्ट करती है।

विकासशील समाज के क्रिया-कलापों, उनकी अपेक्षाओं, उनकी मान्यताओं में, जीवन-पद्धति में निरन्तर उन्नत होने की अभिलाषा तो समझ में आती है तथा राजनीतिक दर्शन के अनुसार सत्ता-प्राप्ति संसदीय प्रणाली में दलों की विचारशक्ति को अभिव्यक्त करती है, परन्तु यह भी उतना ही आवश्यक है कि नागरिकों को लोकतन्त्र में, भले ही वह अल्पसंख्यक क्यों न हो, उन्हें मताधिकार प्राप्त है। अल्पसंख्यकों के हितों का इस रूप में संरक्षण किया जाना चाहिए कि उनकी पूजा-पद्धति और मान्यताओं को, जब तक कि वे संविधान के मूल-भाव के विरुद्ध न हो, उन्हें स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए। लेकिन सत्ताधारियों की मजबूरी है कि वे वोट की राजनीति में अपने द्वारा किए गए कार्यों की मीमांसा करने की अपेक्षा नये-नये हथकंडों के द्वारा शगूफा छेड़कर या वादों में उलझाकर जातीय

हिंसा, सांप्रदायिक हिंसा या अनागत भय को दिखाकर चुनाव को जीतने की नीति का पालन करते हैं।

भूमण्डलीकरण के दौर में जब ग्लोबल विलेज विश्व को एक गाँव की भाँति इकाई होने की अवधारणा को मान लिया गया है तब भी उसमें मानवीय संवेदना तिरोहित होती दिख रही है। आर्यसमाज ऐसे किसी भी विचार को स्वीकार नहीं कर सकता जहाँ संरक्षणवाद के आधार पर वोट की राजनीति को सर्वोपरि मानकर मानव, मानव के मध्य परकोटे-दर-परकोटों का निर्माण किया जाए और उसे ऐसी सीमाओं में बाँध दिया जाए कि जिसकी देहरी को लांघना उसके लिए वर्जना सिद्ध हो। आज आवश्यकता है कि हम ऐसे राजनीतिक दलों की वोट की राजनीति के लिए संरक्षणवाद को स्वीकार करते हुए अल्पसंख्यकवाद जैसे हथियारों से बचने के लिए जनमानस को जाग्रत करें, जिससे लोकतन्त्र का शाश्वत स्वरूप उद्‌घाटित हो सके और राजनीतिक दल केवल अपने लोककल्याण के दर्शन और उनके द्वारा किए गए क्रियाकलापों को ही मतदाताओं के समक्ष रखें, जिससे उन्हें निर्णय लेने में सुविधा हो।

मानवता के इतिहास में राजनीतिक हस्तियाँ और दल सनातन नहीं होते, सनातन राष्ट्र होता है। राष्ट्र विभिन्न विचारधाराओं, कर्त्तव्यों और अन्य प्रयोजनों के लिए भूमि प्रदान करता है। यह भूमि यदि नागरिकों के संतुलित विचारों और अनुशासनों से समृद्ध है, तो नागरिकों के लिए आनन्द का विषय होती है। अन्यथा पाकिस्तान, ईराक, सीरिया तथा इसी प्रकार के अन्य देशों की दूषित मनोवृत्तियाँ और भयंकर विनाशचक्र हमारे सम्मुख होते हैं।

प्रजातन्त्र एक बहुत अच्छी शासन-पद्धति है, परन्तु उसका मूल्य सतत जागरूकता है। यदि उसके नागरिक दुष्प्रचार का शिकार होकर अथवा निहित क्षुद्र स्वार्थों के कारण जागरूकता-धर्म को भूल जाते हैं, तो कोई भी दल सदैव इसी ताक में रहता है कि येन-केन-प्रकारेण नागरिकों को साम, दाम, दण्ड, भेद से पथभ्रष्ट किया जाए ताकि उनमें परस्पर वैमनस्य उत्पन्न हो, उनमें एकता न रहे और उनकी इस दुर्बलता का लाभ उठाकर सत्ता को हथियाया जा सके। इसका प्रतिकार नागरिकों में विवेकबुद्धि की जागरूकता से ही संभव है। अतः चाहे धार्मिक, साम्प्रदायिक समूह हों, राजनेता और बुद्धिजीवी हों, उन्हें राष्ट्र में सभी प्रकार की एकता का समर्थन करना चाहिए। क्षेत्रीय भावनाओं, जातीय अभिमानों और साम्प्रदायिक गुटों में बँटा राष्ट्र कभी पूर्ण शान्ति और समृद्धि की स्थिति प्राप्त नहीं कर सकता। हमें जान लेना चाहिए कि मन-बहलाव के लिए दिया गया नारा **'अनेकता में एकता'** एक छलावा है, तुष्टीकरण का साधन है और मृगमरीचिका है, क्योंकि वेद एकता का प्रतिपादन करता है-

संगच्छध्वं संवदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्।।

वास्तव में **संगठनसूक्त** का यही सूत्र राष्ट्र और समाज की समृद्धि का हेतु है। इसी सूत्र को अपनाकर हम कह सकेंगे-

....पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः।।

(यह पृथिवी-राष्ट्र हमारे लिए कीर्ति और यश की वृद्धि का साधन बने।)

-दिनेश

परोपकारिणी सभा द्वारा आयोजित आगामी कार्यक्रम

१. २३ से ३० मई, २०१८ - आर्यवीर दल शिविर, सम्पर्क- ०९४६००१६५९०

२. ०५ से १२ जून, २०१८ - आर्य वीराङ्गना शिविर, सम्पर्क- ०९४६००१६५९०

३. १७ से २४ जून, २०१८- योग-साधना शिविर, सम्पर्क- ०१४५-२४६०१६४

४. १६, १७, १८ नवम्बर २०१८- ऋषि मेला, सम्पर्क- ०१४५-२४६०१६४

मृत्यु सूक्त-४

प्रवचनकर्ता- डॉ. धर्मवीर
लेखिका - सुयशा आर्य

आचार्य धर्मवीर जी द्वारा वेद के सूक्तों पर दिये प्रवचनों की मांग प्रायः आती रहती है। ये व्याख्यान वेद मन्त्रों पर होने से वेद को आम जन के लिये भी बुद्धिगम्य बना देते हैं। इसे ध्यान में रखते हुए इस प्रवचनमाला में इन्हीं व्याख्यानों को क्रमशः दिया जा रहा है। पाठक इस वेद-ज्ञान की गंगा में स्नान का आनन्द लें। -**सम्पादक**

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात्
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्।। ऋग्वेद १०.१८.१

हमने पिछली चर्चा में देखा था, मन्त्र कहता है **परं मृत्यो अनुपरेहि पंथाम्,** यहाँ मृत्यु को संबोधन है-हे मृत्यु! तू दूसरा रास्ता चुन, **यस्ते स्व इतरो देवयानात्**-जो देवयान से भिन्न है। **मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान्**-तू हमारे युवाओं को, तू हमारे बालकों को '**मा रीरिषः**' अपना रास्ता चुनने के लिए, तू हमारे परिवारजनों को हिंसित मत कर, अपना ग्रास मत बना। **श्रण्वते ते ब्रवीमि** हे मृत्यु! जो तुम सुन रहे हो, तुमको मैं बता रहा हूँ, सुना रहा हूँ, कह रहा हूँ।

इस चर्चा में पहली बात हमने देखी कि जन्म, जीवन, मृत्यु ये आत्मा की यात्रा के पड़ाव हैं। आत्मा जन्म से पहले भी था, जन्म के समय भी था, जीवन में भी था, मृत्यु के बाद भी रहेगा। ये परिस्थितियाँ आत्मा की नहीं हुईं। आत्मा के साथ जब-जब शरीर जुड़ा तो आत्मा का जन्म कहा गया, जब तक शरीर के साथ बना रहा, उसे जीवन कहा और शरीर को जब आत्मा ने छोड़ दिया तो उसे मृत्यु कहा। एक सहज प्राकृतिक नियम है कि जब कोई किसी वस्तु को पाता है तो सुख अनुभव करता है और किसी वस्तु से उसका पृथक्करण हो जाता है, उससे छीन लिया जाता है, अलगाव हो जाता है तो उसे दुःख होता है। वही स्थिति हमारे साथ जीवन और मृत्यु की है। जन्म के साथ हमें जीवन मिला है तो हमने उसे अपना समझ लिया है, अपने साथ जोड़ लिया है, अपना मान लिया है। इसलिए मृत्यु में जो दुःख होता है वो शरीर का दुःख नहीं है, आत्मा का दुःख है और आत्मा का दुःख यह है कि मेरे से क्यों छिन रहा है, मैं फिर कैसे रहूँगा? कोई इस शरीर में रह रहा है तो शरीर को अपना अस्तित्व मान रहा है और शरीर से पृथक् होने को वो दुःख मान रहा है, खेद मान रहा है, कष्ट मान रहा है। यह स्थिति बिल्कुल सहज है। आप बच्चे से उसका खिलौना तब नहीं ले सकते जब वह उससे खेल रहा हो। खिलौने से खेलते हुए बच्चे से यदि आप खिलौना लेते हैं, छीनते हैं, आप माँगते हैं तो वह देता नहीं है। आप छीनते हैं तो वह रोता है।

यही स्थिति जीवात्मा की है। यह शरीर उसे मिला है, चाहे उसे गधे का मिला हो, चाहे मनुष्य का मिला हो, चाहे पशु-पक्षी का मिला हो। वो इससे जीवन का खेल खेल रहा है। संसार में सारा खेल इस शरीर से ही होता है। यह शरीर न हो तो उसका कोई खेल ही नहीं है। वो इस खिलौने से खेलता है, इस खिलौने से खेलते-खेलते अकस्मात् खिलौना टूटने का डर आ जाए, छिनने का डर आ जाए तो जैसे बालक चीखकर रोता है, वैसे ही यह मनुष्य, यह पशु, यह प्राणि भयंकर कष्ट का अनुभव करता है।

हम यह समझते हैं कि यह मृत्यु दुःख का कारण है। मृत्यु दुःख तो है, क्योंकि जब मैं उसे नहीं चाहता और वो मेरे पास आ रही है, मुझे बलात् ले जा रही है, तो नियम है कि जो कुछ मेरे से बलपूर्वक छीना जाएगा, जबर्दस्ती ले लिया जाएगा, उसका मुझे कष्ट तो होगा ही। इसमें एक प्रसंग ध्यान करने का है-योगदर्शनकार ने जहां इस आत्मा को दुःख से छूटने की बात कही है वहां योगदर्शन के दूसरे पाद में योग की आवश्यकता समझा रहे हैं। वहाँ क्रिया योग की परिभाषा की है- **तपः स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानानि**

क्रिया योगः। यह जो क्रिया योग है, तीन तरह से किया जाता है। तीन चीजों को साथ-साथ रखने से होता है। पूछा कि इसकी आवश्यकता क्या है? तो कहते हैं- **समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च**-एकाग्रता सिद्ध हो जाए, मन पर, चित्त पर नियन्त्रण हो जाए और उसके परिणामस्वरूप हमारे दुःख छुट जायें, कम हो जायें, सहनीय हो जायें। यहाँ जो दुःख बताए, तो एक समस्या आई कि दुःख है क्या? तब सूत्र बनाकर पतंजलि मुनि कहते हैं- **अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंच क्लेशाः** कि एक जीवात्मा को ५ चीजें दुःख देती हैं- **अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश**। और उसमें-**अविद्या श्रेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम्**-कहता है कि गिनाए तो हमने पाँच हैं, लेकिन वास्तव में यह पाँच तो फैलकर होते हैं आगे बढ़कर होते हैं। इनका जो मूल है, इनकी जड़ है वो तो एक है। वो है **अविद्या, अज्ञान**।

अब एक बात समझ में आती है कि दुःख अविद्या के कारण होता है, अज्ञान के कारण होता है। इन पांच दुःखों में **अविद्या** तो अज्ञान का दुःख है। **अस्मिता** द्रष्टा और दृश्य को एक समझना, जीवात्मा और शरीर को एक मानना, जीवात्मा को शरीर से जोड़कर देखना, शरीर को ही जीवात्मा समझ लेना। इसके परिणामस्वरूप शरीर को जो अच्छा लगने वाली चीजें हैं उनके प्रति अनुराग होना, आसक्ति होना, इच्छा होना यह **राग** है और जो शरीर को कष्ट देने वाले कारण हैं, उनसे अनिच्छा होना, दूरी रखना **द्वेष** है। इन दुःखों में एक दुःख, पाँचवाँ जो गिनाया है, जो सबसे बड़ा माना गया है, वो है **अभिनिवेश**। **अभिनिवेश** कहते हैं-मृत्यु का भय, मृत्यु का डर और इसकी पहचान है कि दुनिया में चींटी से लेकर हाथी तक, चाहे मनुष्य है, पशु है, पक्षी है, ज्ञानी है, अज्ञानी है, मूर्ख है, बड़ा है, छोटा है, कम आयु का है, अधिक आयु का है, धनी है, निर्धन है, बलवान् है, निर्बल है चाहे जो है, सब के सब मृत्यु से डरते हैं। सबमें एक भय है-कहीं ऐसा न हो कि मैं न रहूँ, **'न भूयासम्'**। अर्थात् मैं अपने अस्तित्व को, अपने शरीर से जोड़ बैठा हूँ कि यदि मेरा शरीर नहीं रहेगा तो मेरा अस्तित्व ही नहीं रहेगा। इसलिए मैंने मान लिया है कि इसका छूटना सबसे बड़ा दुःख का कारण है और यही मृत्यु है।

जैसे सूत्रकार ने बताया कि इस दुःख का भी मूल कारण अविद्या ही तो है। अविद्या की परिभाषा करते हुए उन्होंने कहा कि जो वस्तु जैसी है उसको वैसा न मानकर अलग मानना। जो जड़ है उसको चेतन समझना, जो चेतन है उसको जड़ समझना, जो सुख है उसको दुःख मानना, जो दुःख है उसे सुख मानना, जो अच्छा है उसे बुरा, जो बुरा है उसे अच्छा मानना, सुख-दुःख, पुण्य-अपुण्य इनको विपरीत समझना। यह जो सोच है, यह हमारे मन की स्थिति है, यह अविद्या है। हम इससे बचें। यदि इससे नहीं बचे तो हम दुःखों से भी नहीं बच सकते।

सामान्यरूप से जब हम प्रार्थना करते हैं तो प्रार्थना सदा चेतन से की जाती है, लेकिन सारे संसार में हम देखते हैं कि जड़ से प्रार्थना हो रही है। अब सोचने की बात है कि प्रार्थना विषय तो चेतन का है और की जा रही है जड़ से, फिर सुनवाई कैसी होगी? उसका परिणाम हमें अनुकूल कैसे मिलेगा? तो कहता है कि यह असली भय मृत्यु का है। इस शरीर को हमने मैं मान लिया है, जीवात्मा मान लिया है। वैसे यह बड़ा संकट है कि शरीर चेतन है, चेतन दिखाई दे रहा है, इसमें किसी को भी सन्देह नहीं है, लेकिन इसमें भी कोई सन्देह नहीं है कि शरीर भौतिक है और दुनिया की कोई भी भौतिक वस्तु चेतन होती ही नहीं है। जो भी भौतिक है वो जड़ है, जो भी साकार है वो जड़ है, जो भी स्थूल है वो जड़ है, जो भी निर्मित है वो जड़ है और जो जड़ है वो निष्क्रिय है, संवेदना से रहित है, उसका अपना कोई सुख, दुःख का अनुभव नहीं है। लेकिन मेरा जो सारा अनुभव है वो शरीर के कारण जुड़ा हुआ है। तो यह कहता है कि शरीर और आत्मा के बीच का जो संबन्ध है, इसको जब हम गलत समझते हैं। एक समझते हैं तो उससे दुःख होता है। उसको एक समझकर काम करना यह पितृयाण है और उसको पृथक् समझ के काम करना यह देवयान है।

विचित्रता इस संसार की, इस शरीर की है कि यह मनुष्य का शरीर ही संसार की वस्तुओं के साथ संबन्ध बना सकता है, उनका लाभ, सुख उठाता है और यही हमारे लिए परमेश्वर को, आत्मा को साक्षात्-करने का,

ईश्वर को प्राप्त करने का साधन भी है। इसकी अनिवार्यता, आवश्यकता के कारण हम इसको छोड़ नहीं सकते और जब इस शरीर को हम छोड़ना नहीं चाहते तो दुनिया भी नहीं छूटती। शरीर को हम छोड़ दें, उपेक्षा कर दें तो हमें मुक्ति नहीं मिल सकती। शरीर के साथ रहना चाहें, तो मुक्ति की ओर जा नहीं सकते। हमारी परिस्थिति को इस मन्त्र में समझाया है।

'परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात्' देवयान भी इसी शरीर से है और पितृयाण भी इसी शरीर से है। अन्तर इतना है कि इस शरीर से छूटकर शरीर को फिर प्राप्त न होना यह तो देवयान है अर्थात् दोबारा शरीर के रास्ते पर न जाना और इस संसार के सुखों का अनुभव करते हुए फिर इसी शरीर को प्राप्त करना, ये पितृयाण है। जो पितृयाण मार्ग है, उसमें कभी भी मृत्यु से नहीं बच सकते, क्योंकि इस शरीर का छूटना ही तो मृत्यु है। देवयान वाला भी इस शरीर से छूटता है और पितृयाण वाला भी इस शरीर से छूटता है। तो यह कहना कि देवयान वाले को मृत्यु नहीं आती कैसे? मृत्यु यदि शरीर छूटने का नाम है तो पितृयाण वाले का जैसा छूटता है, वैसा ही देवयान वाले का छूटता है फिर अन्तर किस बात में है? वह अन्तर इस बात में है कि पितृयाण वाले का शरीर छूटता है, पितृयाण के नाते फिर उसको शरीर मिलता है और शरीर मिलने का परिणाम है फिर अगली मृत्यु, परन्तु देवयान का मतलब होता है इससे छूट जाना, अगली मृत्यु को न प्राप्त करना।

ईश्वर का आश्रय न करके कोई भी मनुष्य प्रजा की रक्षा नहीं कर सकता। जैसे ईश्वर सनातन न्याय का आश्रय करके सब जीवों को सुख देता है, वैसे ही राजा को भी चाहिये कि प्रजा को अपनी न्याय-व्यवस्था से सुख देवे।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.३९

जो विद्या की वृद्धि के लिए पठन-पाठन रूप यज्ञ कर्म्म करने वाला मनुष्य है वह अपने यज्ञ के अनुष्ठान से सब की पुष्टि तथा संतोष करने वाला होता है इससे ऐसा प्रयत्न सब मनुष्यों को करना उचित है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ७.२७

एक आहुति
अपने आचार्य के लिए........

ऋषि दयानन्द की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा की तन, मन, धन से सेवा करने वाले, उसे अपनी मातृवत् समझने वाले और यहाँ तक कि अपना जीवन समर्पित कर देने वाले डॉ. धर्मवीर आज अपना समस्त भार आर्य जनता अर्थात् अपने उत्तराधिकारियों पर छोड़ गये हैं। उन्होंने ऋषि के स्वप्नों को अपना कर्त्तव्य समझकर सभा को गगनचुंबी ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अनेक नये प्रकल्प चलाये यथा-वैदिक गुरुकुल, गौशाला, आश्रम, अतिथियों के ठहरने व खान-पान की निःशुल्क व्यवस्था आदि। उन्होंने जो-जो कार्य छेड़े उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति में कभी न्यूनता न आने दी। परोपकारिणी सभा ऐसे पुत्र को प्राप्त कर गौरव का अनुभव करती है और बिछुड़कर शोकग्रस्त होने का भी। उनके द्वारा शुरु किये कार्य कभी शिथिल न पड़ें, इस कारण **सभा ने डॉ. धर्मवीर जी की स्मृति में एक करोड़ रु. की स्थिर निधि बनाने का संकल्प लिया है,** जिससे कि धन धर्म के काम आ सके। इसमें सन्देह नहीं कि ये समस्त कार्य आर्य जनता के सहयोग से ही प्रारम्भ हो सके हैं और सहयोग से ही चल भी रहे हैं। इसलिये इसमें भी सन्देह नहीं कि सभा के इस संकल्प को आर्य जनता शीघ्र पूर्णता की ओर पहुँचा देगी और शायद उससे भी कहीं बढ़कर। यज्ञ तो हवि माँगता है। बिना हवि के यज्ञ की कल्पना भी क्या? बस देरी तो सूचित होने की है। हवि बनना तो आर्यों के खून में है, तन से, मन से अथवा धन से।

आप अपना दान चैक, ड्राफ्ट या सभा के खाते में सीधे भी भेज सकते हैं। कृपया, राशि भेजने के पश्चात् सभा में दूरभाष या पत्र द्वारा अवश्य सूचित कर दें।

– मन्त्री

कुछ तड़प-कुछ झड़प

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

श्रीमती हरदेवी जी- कुछ वर्षों से नारी उत्थान पर शोध करने वाले कई युवा गवेषकों का श्रीमती हरदेवी जी के संबन्ध में जानकारी प्राप्त करने तथा दस्तावेज देखने के लिये मेरे यहाँ आना-जाना बना हुआ है। श्री डॉ. दिनेश जी ने इस विषय में रुचि रखने वालों से सम्पर्क साधा है। कुछ लोग हरदेवी जी के बारे में मनगढ़न्त कहानियाँ प्रचारित कर रहे हैं। जब आर्यसमाज पं. लेखराम के मिशन को छोड़कर धर्म-प्रचार के नाम पर बनावटी कामों में उलझा हुआ है तो फिर इतिहास-प्रदूषण होगा ही।

जिन्होंने हरदेवी को राजा राममोहनराय और केशवचन्द्र से जोड़ा है उनके जुड़वाँ भाई अब उसे विवेकानन्द से भी जोड़ेंगे। क्या आज तक ऐसे रिसर्चस्कॉलरों ने उनकी संक्षिप्त जीवनी या आत्म-परिचय देखा या पढ़ा है? अभी तक तो इन्हें इतना ही पता नहीं कि उनके पिता श्री कन्हैयालाल कौन थे? मैं समय-समय पर पुराने आर्य पत्रों के आधार पर हरदेवी पर नई-नई जानकारी देता आया हूँ। ज्ञात तथ्यों को आर्यसमाज ने मुखरित न किया।

कई वर्षों की भागदौड़ के पश्चात् मैंने श्रीमती हरदेवी का स्वलिखित आत्मपरिचय खोज लिया है। इसमें राजा राममोहनराय आदि किसी ब्रह्मसमाजी की कतई चर्चा नहीं। दो कर्मठ और सुयोग्य आर्यपुरुषों की खुलकर चर्चा मिलती है। सत्यान्वेषी कुछ प्रतीक्षा करें, मैं उनके आत्मपरिचय के आधार पर नये सिरे से लिखूँगा। मैं जानता हूँ कि सब राजनीतिक दल ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की प्रतिष्ठा व गौरव के द्वेषी हैं। यदि पाँच-दस सुयोग्य आर्य युवक मेरे साथ जुड़कर खड़े हो जायें तो दम्भदुर्ग को ध्वस्त करके यथार्थ इतिहास की रक्षा हो सकती है।

इतिहासप्रेमी यह न भूलें कि हरदेवी ने अपने पैतृक निवास को स्त्री जाति के उत्थान के लिये 'कन्या महाविद्यालय' को भेंट करने की वसीयत की थी। इससे क्या पता चला कि वह क्या थी?

पं. लेखराम सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर- दिल्ली के दो सज्जनों ने एक पत्रिका में श्री विवेक आर्य के छपे लेख पर कुछ प्रश्न पूछे हैं। पण्डित जी पर कोई लेख छपा देखकर मेरा हर्षित होना एक स्वाभाविक सी बात है। इस लेख में लेखक की असावधानी से कुछ बहुत भयङ्कर भूलें हुईं हैं। प्रश्न उठाने वालों की चिन्ता व आपत्तियाँ ठीक हैं। इस लेख में दी गई सामग्री का आधार कौन-कौन से ग्रन्थ हैं, इसका लेख में कोई संकेत नहीं, परन्तु कोट छुट्टा के तीन आर्यवीरों की घटना श्री पंडित जी पर मेरे ही ग्रन्थ से हो सकती है, और किसी भी जीवनी-लेखक ने इसे दिया ही नहीं।

आर्यवीर खूबचन्द की माता ने उसे जिस कमरे में बन्द किया था वह उसकी छप्पर की छत फाड़कर भागकर शवयात्रा में अपने साथियों से जा मिले थे। ताला तो बाहर माता ने लगाया था, उसको तोड़ने का प्रश्न ही नहीं। ख़ूबचन्द जी मेरे बहुत कृपालु आर्यपुरुष थे। हिसार में उनका निधन हुआ था। पं. शान्तिप्रकाश जी का जन्म कोट छुट्टा में ही हुआ था। भ्रामक कथन का सुधार आवश्यक था। इतिहास-प्रदूषण का कुचक्र न चले, इसलिये तथ्य और सत्य क्या है, यह लिख दिया।

पण्डित जी के पुत्र सुखदेव के निधन की घटना के वर्णन में भी लेखक से चूक हुई। स्मृतिदोष से भूमण्डल प्रचारक मेहता जैमिनि ने एक लेख में ऐसा लिख दिया कि पण्डित जी अपने बेटे को बीमार अवस्था में छोड़कर प्रचार में चले गये थे। यह भ्रम-भञ्जन करते-करते हम बूढ़े हो गये, किन्तु भ्रान्ति-निवारण नहीं हो पाया। रक्तसाक्षी पं. लेखराम ग्रन्थ में इसका सप्रमाण विवेचन किया गया है। पण्डित जी पुत्र का दाहकर्म करके प्रचार-यात्रा पर निकले थे। चाचा गण्डाराम जी की साक्षी सबसे बड़ी है। आपने पण्डित जी के जीवन में जो लिखा है वही सत्य है। पूज्य स्वामी श्रद्धानन्द जी की लिखी पण्डित जी की जीवनी में भी यह नहीं लिखा कि पण्डित जी तब जालन्धर में नहीं थे।

आश्चर्य की बात तो यह है कि असाधारण स्मरणशक्ति वाले मेहता जैमिनि तब जालन्धर में ही थे, फिर भी अल्पज्ञता

से भूल कर बैठे।

जैसे प्रूफ़ की अशुद्धियाँ दूर करते-करते प्रूफ़रीडर स्वयं अशुद्धियों का शिकार हो जाता है। वैसे ही भ्रम-भञ्जन करते-करते हम भी शंकित होकर भ्रमित हो जाते हैं। श्री विवेक जी ने **'वही हमारा कृष्ण'** ट्रैक्ट को **मिर्ज़ा गुलाम अहमद** लिखित बताया है। हमने इस पर कादियाँ में कई बार व्याख्यान दिये। यह नबी के पुत्र दूसरे ख़लीफ़ा का लिखा विषैला व घातक ट्रैक्ट है। आश्चर्य है कि अद्यपर्यन्त हिन्दुत्वादी पौराणिकों ने इसके प्रतिवाद में एक वाक्य भी न कभी लिखा है और न कहा है।

पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय महाप्रयाण अर्धशताब्दी- यह वर्ष पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय महाप्रयाण अर्धशताब्दी वर्ष है। मुझे अब यात्राओं से सब रोकते हैं। नये-नये काम सुझाते-बताते हैं। कार्यों से दबा रहता हूँ। तथापि साहित्य पिता की इस अर्धशताब्दी पर दो पुस्तकें जैसे भी होगा, तैयार कर दूँगा। मेरे प्रेमी युवक जो ऋषि मिशन के दीवाने हैं, वे इन्हें प्रकाशित कर देंगे। इसी सप्ताह कुल्लियात का कार्य करते हुये यह कार्य भी आरम्भ कर दूँगा।

आर्यो! रूस में साम्यवादियों के शासन में वैदिक धर्म और आर्य संस्कृति पर किसी ने कुछ भी न लिखा। महात्मा टॉलस्टॉय के पश्चात् किसी ने ऋषि पर एक पंक्ति भी न लिखी। ज्ञानप्रसूता, लौहलेखनी के धनी पूज्य पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय के पुण्य प्रताप से एक रूसी विचारक ने अपने एक ग्रन्थ में आर्यसामाजिक विचारधारा पर एक उत्तम लेख लिखा है। ग्रन्थ पढ़कर हम झूम उठे। इस ग्रन्थ में लेखक ने उपाध्याय जी के नाम का तो संकेत नहीं किया, परन्तु त्रैतवाद पर लिखते हुये उसने एक पारिभाषिक शब्द का प्रयोग किया है। पूज्य उपाध्याय जी तथा स्वामी सत्यप्रकाश जी ही उस शब्द का प्रयोग किया करते थे। इससे मैं समझ गया कि इस प्रशंसित लेखक ने हमारे श्रद्धेय उपाध्याय जी के साहित्य-सागर में अवश्य डुबकी लगाई है। इस शब्द का प्रयोग आर्यसमाज में कभी किसी लीडर ने तो भूलकर भी नहीं किया। उस प्रशंसित रूसी लेखक ने आर्य विचारधारा पर जो कुछ भी लिखा है वह ठीक ही लिखा है। जिस दार्शनिक समर्पित पुण्यात्मा ने संसार के हर कोने में ऋषि-दर्शन का डंका बजा दिया उसका ऋण चुकाने के लिये इस पर्व पर सगर्व हम भी कुछ करें।

मेरी खोज के अनुसार गुरुजी ने ६५ वर्ष तक काव्य रचना की। स्वामी सत्यप्रकाश जी को पूज्य पिताजी व गुणी, ज्ञानी मामा डॉ. विद्याभूषण विभु जी से काव्य-कला बपौती में प्राप्त हुई। यह ध्यान रहे कि जब उपाध्याय जी ने कवितायें लिखनी आरम्भ कीं उसी काल में मेधावी सत्यप्रकाश बालक का जन्म हुआ।

इन युवकों से सब सीखें- आर्य सज्जनों को 'परोपकारी' द्वारा कई बार बताया जा चुका है कि परतवाड़ा विदर्भ का नया सक्रिय आर्यसमाज सारा वर्ष नये-नये कार्यक्रम बनाकर ऋषि मिशन का डंका बजाता हुआ आगे बढ़ रहा है। इस आर्यसमाज के नररत्न श्री पंकज शाह 'कुछ तड़प झड़प' पढ़कर आर्यसमाज की ओर खिंचे। फिर दो वर्ष तक दूरभाष पर अपनी व अन्य युवकों की शंकाओं का समाधान करने के लिये एक-एक दो-दो घण्टे तक मुझसे वार्तालाप करते थे। मैंने उन्हें कहा, ये सब युवक भाग जायेंगे। आप इन्हें काम दो। ''काम क्या दूँ?'' यह पंकज जी ने पूछा। मैंने कहा, आपके क्षेत्र में पहले ईसाई और अब मुसलमान हमारे वनवासी भाइयों में प्रचार कर उन्हें धर्मच्युत कर रहे हैं। आप पं. नरेन्द्र या स्वामी श्रद्धानन्द जी के नाम पर सेवा-केन्द्र चलाकर उनमें धर्म-प्रचार करो।

आज हमारा सेवा-केन्द्र वहाँ एक सुदृढ़ दुर्ग बन चुका है। सारा वर्ष शिविर चलते रहते हैं। आसपास और २०-२० किलोमीटर तक हमारा प्रचार अभियान चलता रहता है। एक नये समाज की स्थापना करके, भवन किराये पर लेकर श्री राहुल आर्य, अकोला को प्रधान बनाकर इस क्षेत्र में हमारा संगठन फलफूल रहा है। पथरोट जैसा पुराना समाज (जो निष्प्राण हो चुका था) अब उठ खड़ा हुआ है। श्री धर्मवीर जी भी एक बार मेरे साथ वहाँ गये थे। अपनी जेब से कुछ सहयोग राशि भी दे आये। परोपकारिणी सभा का इन्हें सहयोग प्राप्त है।

ऐसे ही देवनगर (महेन्द्रगढ़) में उत्साही, शान्त, गम्भीर, पुरुषार्थी युवकों ने समाज स्थापित कर दिया है। इस दूरस्थ समाज के मेधावी, कर्मठ, लगनशील युवक पूरा वर्ष ऐसे-

ऐसे कार्य करते रहते हैं, जिनकी बड़ी-बड़ी सभायें कल्पना तक नहीं कर सकतीं। देश-विदेश से अनेक दुर्लभ, दबे पड़े दस्तावेजों (documents) की खोज में कर्मवीर राहुल आर्य को देवनगर के श्री इन्द्रजित आर्य, श्री अनिल आर्य का भरपूर सहयोग रहता है। युवा देवियों में भी यहाँ विशेष प्रचार है। सारा वर्ष इनका प्रचार अभियान चलता है। पद की इनको कोई भूख ही नहीं। श्री महेन्द्रसिंह आर्य इनको जोड़कर कार्यरत रखते हैं। बड़ों का ये सम्मान करते हैं।

हरियाणा में एक अनुभवी श्रद्धावान् स्वाध्यायशील आर्य पिता के पुत्र श्री अभय आर्य भी पूरा वर्ष ग्रामों में वेद-प्रचार की अलख जगाते रहते हैं। आचार्य बलदेव जी के साथ संघर्ष में सदा आगे रहे। ग्रामों में जितना घूम-घूम कर अभय प्रचार करते हैं, इतना घुमकड़ आर्य मिशनरी कहाँ मिलेगा। कुछ वर्ष पूर्व मेरे ज्येष्ठ भ्राता प्रिं. यशपाल जी ने श्री अभय की लगन व कर्मण्यता का मुझे परिचय दिया। सत्ता व सम्पत्तिवालों के आगे-पीछे घूमने वालों की कृपा से आर्यसमाज निष्प्राण हो चुका है। आओ इन युवकों से कुछ सीखें।

'नई उमंग' क्या है?- राजस्थान सरकार ने पहले २५ महापुरुषों की जीवनियाँ अपने पाठ्यक्रम में रखीं। उनमें स्वामी विवेकानन्द आदि सब सरकार के माननीय महापुरुष ले लिये गये। ऋषि दयानन्द, श्यामजी कृष्ण वर्मा, हुतात्मा महात्मा गोपालदास, बारहट प्रतापसिंह हुतात्मा, श्री हरविलास सारडा राजस्थान के प्रथम समाज सुधारक को इनमें स्थान न मिलना बहुत लज्जाजनक है।

अब 'नई उमंग' नाम से दूसरी खेप आ गई है। इसमें स्वामी विवेकानन्द के गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस आदि आ गये हैं। बंगाल में एक-एक, दो-दो वर्ष की सहस्रों शिशु विधवाओं के लिये रो-रोकर महर्षि दयानन्द के नयनों में नीर न रहा। उस परमप्रतापी सुधारक का नाम और काम बोगस इतिहासों में सरकार की कृपा से भले ही न मिले, परन्तु हम अपने तपोबल से राष्ट्रीय इतिहास की और सत्य की रक्षा करेंगे। आश्चर्य का विषय है कि राजस्थान में जिस श्यामजी कृष्ण वर्मा का नाम कभी घर-घर में गूंजता था, गुजरात में उसे लोग कम जानते थे। उस क्रान्तिकारी का राजस्थान में भी लोप कर दिया गया है।

मित्रो! सरकार को यह हुँकार सुना दो कि आपकी नई-पुरानी उमंग में किसी विचारक, सुधारक महात्मा के पत्र-व्यवहार में किसी क्रान्तिकारी के चार-पाँच पत्र तो दिखा दो। विधवा, अनाथ, देवदासियों का दुखड़ा दूर करने के लिये किसने देश में सर्वप्रथम आवाज़ उठाई।

'ख़ाब था जो कुछ कि देखा जो सुना अफसाना था'

मैक्समूलर की अन्तिम पुस्तक- अपने निधन से कुछ समय पूर्व मैक्समूलर बहुत रुग्ण हो गया। उसके कथनानुसार डॉक्टरों ने उसके रोग को जानलेवा बताया। एक मद्रासी ब्राह्मण ने अपने कुछ मित्रों को साथ लेकर एक बड़े मन्दिर के पुजारी को जैसे-कैसे दक्षिणा आदि देकर अपने भगवान् से मैक्समूलर के रोगमुक्त होने की प्रार्थना करवाने में सफलता पाई। तब वह बच गया और मन्दिर के उस पाषाण देवता को अपने रोग मुक्त होने का श्रेय और प्रमाण (credit) देकर हिन्दुओं को अच्छा मूर्ख बनाया। स्वामी विवेकानन्द जी का महामान्यवर गोरा गुरु मैक्समूलर कुछ ही समय पश्चात् मर गया। पत्थर का वह भगवान् और मैक्समूलर दोनों ही झूठे सिद्ध हुये।

मैक्समूलर की अन्तिम पुस्तक My Indian Friends को मैक्समूलर के भारतीय प्रशंसकों, भक्तों व आलोचकों में से बहुत थोड़े लोगों ने पढ़ा है। उसकी बहुत कम चर्चा होती है। स्वामी विवेकानन्द जी ने जिस मैक्समूलर की भावविभोर होकर प्रशंसा की है, उसने अपनी चतुराई से इस पुस्तक में भारतीय धर्म, दर्शन व इतिहास का उपहास उड़ाने व निन्दा करने में कोई कमी नहीं छोड़ी। श्री लक्ष्मण 'जिज्ञासु' ने बड़ यत्न से इस पुस्तक की एक प्रति मेरे लिये खोज निकाली है। इसमें मैक्समूलर ने ऋग्वेद के बारे में लिखा है, "Nor have I been disappointed by the Rig-Veda, though it is different from what I and others expected. There are large portions in it which have hardly any connection with religion at all...".

आश्चर्य होता है कि स्वामी विवेकानन्द जी या उनके

नामलेवा राष्ट्रभक्तों ने वेद पर किये गये इस घिनौने प्रहार पर कभी कुछ नहीं कहा व लिखा। कुछ तो प्रतिक्रिया देते।

वेद की निन्दा करके, फिर वेद की कुछ उत्तम शिक्षायें देकर मैक्समूलर पुराणों की अश्लील, सृष्टि नियम विरुद्ध कहानियों की धज्जियाँ उड़ाते हुये ईसाई मत का कैसे गुणकीर्तन करता है:-

"Though the number is small in the Sanhita, yet there is so much more simplicity and purity in most of these old hymns that I cannot understand how they could ever have been superseded by the Puranas, works which from a moral, religious and intellectual point of view do not seem to me worthy to rank as the Bibles of a nation so highly gifted as the inhabitants of Aryavarta."

यहाँ वेद की पवित्र शिक्षाओं से पुराणों की अनैतिक, अधार्मिक और बुद्धि-विरुद्ध बातों की तुलना करते-करते परोक्ष रूप से बाइबिल की प्रशंसा कर दी गई है। तिलकधारी पौराणिक भागवत आदि पुराणों की कथायें करने-कराने वाले भी इस पर मौन हैं। आज तक कुछ नहीं बोल सके।

इसी पुस्तक में मैक्समूलर लिखता है, "The end of all the Vedas is Truth," सब वेदों का अन्त, सार और आधार सत्य है। इसके साथ ये शब्द जोड़ दिये गये हैं, " We are now told that all Indians are liars!" अर्थात् हमें अब यह बताया जाता है कि सब भारतीय असत्यवादी, झूठे हैं। कौन बच सका है प्रहार से। अच्छा होता स्वामी विवेकानन्द ही अपने प्यारे मैक्समूलर के इस प्रमाण-पत्र पर कुछ लिखते। उनके नामलेवा तो उनकी मूर्तियाँ खड़ी करने और उनकी बड़ाई करने में लगे हैं। वे उत्तर देना क्या जानें।

आर्य जनता का उत्साह और नया साहित्य- परोपकारी में पं. लेखराम जी के साहित्य 'कुल्लियात आर्यमुसाफिर' के प्रकाशन की शुभ सूचना पढ़कर आर्यसमाज में उत्साह की लहर दौड़ गई है। अनेक भाई इस विषय में चलभाष पर पूछताछ करते रहते हैं। इसमें कुछ समय तो लगेगा। सम्पादन तथा प्रूफ़ का काम समय व श्रम माँगता है। इतने उच्चकोटि के खोजपूर्ण साहित्य का प्रकाशन उसके अनुरूप सावधानी तथा श्रम माँगता है। पण्डित जी के साहित्य पर हमारे मूर्धन्य विद्वानों ने क्या लिखा है। मत पन्थों के ग्रन्थों पर उसका प्रभाव तथा मौलाना रफीक दिलावरी, अब्दुल्ला मेमार, सर सैयद अंहमद खाँ के मत को उद्धृत करना होगा। अमेरिका, पाकिस्तान के साहित्य में पण्डित जी की चर्चा का उल्लेख तथा पं. भगवद्दत्त जी, पं. शान्तिप्रकाश जी, पं. देवप्रकाश जी की सम्मतियाँ देना कोई साधारण कार्य तो है नहीं। कार्य निरन्तर हो रहा है। पूछताछ करना जनता का अधिकार है। प्रकाशन पूर्व अग्रिम सदस्य चाहियें। पण्डित जी पर छपे अब तक के सबसे बड़े ग्रन्थ रक्तसाक्षी पं. लेखराम पर हमने जितना श्रम किया है इस पर भी पूरी शक्ति लगायेंगे। आचार्य श्री विरजानन्द जी ने संस्कृत ग्रन्थों के सैंकड़ों प्रमाणों पर एक दृष्टि डालना सहर्ष स्वीकार कर लिया है।

दो ग्रन्थों का विमोचन- 'स्वामी श्रद्धानन्द जीवन-यात्रा' ग्रन्थ का विमोचन अमेरिका के शिकागो नगर में तो होगा ही। मैंने श्री रमेश मल्हन वैदिक मिशनरी को सन्देश भेज दिया है कि ग्रन्थ की गरिमा के अनुरूप श्री डॉ. हरिश्चन्द्र जी से इसका विमोचन करवाया जावे। ग्रन्थ छप चुका है। जिल्द बांधने में थोड़ा समय और लगेगा। स्वामी जी के जीवन और आर्यसमाज के इतिहास की पर्याप्त नई और प्रामाणिक सामग्री संसार के सामने आयेगी। भारत में इसका विमोचन देवनगर समाज (हरियाणा) में होगा।

'ऊर्जा के स्रोत अमर धर्मवीर' पुस्तक खोजपूर्ण है। वीर रस प्रधान एक आर्य विचारक की जीवनी का विमोचन कहाँ हो? इस विषय में मित्रों से विचार-विमर्श चल रहा है। 'रक्तरंजित है कहानी' का प्रथम भाग भी कुछ मास में प्राप्य होगा। जहाँ हमारे पुरुषार्थी आर्य चाहेंगे वहीं आर्य हुतात्माओं पर लिखी गई इस लोकप्रिय पुस्तक के विमोचन का कार्यक्रम रखा जायेगा।

(परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित)

योग–साधना शिविर

दिनांक : १७ से २४ जून, २०१८

(ज्येष्ठ शुक्ल ४ से ज्येष्ठ शुक्ल ११, सम्वत् २०७५ तक)

आज समाज के अनेक क्षेत्रों में अनेक प्रकार से लोग साधना के लिए प्रयासरत हो रहे हैं। अनेक प्रशिक्षकों द्वारा इस विषयक ज्ञान–विज्ञान भी प्रदान किया जा रहा है। फिर भी साधकों को साधना की सन्तुष्टिदायक स्थिति प्राप्त नहीं हो पा रही है। इसका कारण है कि साधना के विषय **साध्य, साधन, साधक व अन्य साधकों–बाधकों** के ज्ञान का वैदिक परम्परा से दूर होना। इस योग–साधना शिविर में इन्हीं विषयों का वैदिक–दर्शनों के द्वारा ज्ञान करवाया जायेगा, उससे सम्बन्धित जिज्ञासाओं का समाधान व आत्मनिरीक्षण के द्वारा अपनी उन्नति का मापदण्ड बताया जायेगा। यह शिविर अवश्य ही आपकी साधना की उन्नति में विशेष साधन बनेगा, जिससे कि मानव जीवन के मुख्य व चरम लक्ष्य की प्राप्ति उत्तरोत्तर काल में आप अपने निकट अनुभव करने लगेंगे।

प्रार्थियों हेतु नियम व अनुशासन

१. प्रत्येक प्रार्थी के लिए पूर्ण मौन अनिवार्य होगा।

२. शिविर के काल में किसी साधक के द्वारा नियम व अनुशासन भंग करने पर उसे शिविर के मध्य में ही शिविर छोड़ने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

३. पूरे शिविर में साधक के द्वारा किसी भी माध्यम से बाह्य–सम्पर्क करना निषिद्ध रहेगा।

४. शिविर काल में किसी भी साधक को ऋषि उद्यान परिसर से बाहर जाने की अनुमति नहीं होगी।

५. साधकों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति ऋषि–उद्यान परिसर में ही की जायेगी।

६. बाह्य–वृत्ति उत्पादक साधनों जैसे– समाचार–पत्र पढ़ना, आकाशवाणी श्रवण व दूरदर्शन देखने आदि पर पूर्ण प्रतिबन्ध रहेगा।

७. किसी प्रकार का शारीरिक रोग यथा– खाँसी, जुकाम अथवा अन्य कोई ध्वनि उत्पादक रोग वाले को प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

८. बच्चों को साथ लाये जाने पर प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जाएगा।

९. किसी भी मादक द्रव्य, चाय–कॉफी आदि का सेवन निषिद्ध होगा।

१०. शिविर के प्रारम्भ दिन से लेकर समापन–सत्र पर्यन्त पूर्ण रूप से शिविर में भाग लेना अनिवार्य होगा।

११. नियम व अनुशासन के पालन को आवेदन में ही लिखित स्वीकार करना होगा।

उपरिलिखित किसी भी नियम व अनुशासन का पालन करने में असमर्थ व अयोग्य प्रार्थी को शिविर में प्रवेश नहीं दिया जायेगा।

प्रार्थियों के लिए सूचनाएँ–मन्त्री परोपकारिणी सभा, केसरगंज, अजमेर (राज.) से संपर्क कर शिविर से पूर्व शुल्क जमा करवा कर अपने नाम का पंजीयन करा लें। शिविर में माता–बहिनें भी भाग ले सकती हैं। पुरुषों एवं महिलाओं के आवास की सामूहिक व्यवस्था पृथक्–पृथक् की जाती है। पृथक् कक्ष चाहने वालों को अतिरिक्त शुल्क १००० से २००० रु. देय होता है। पृथक् कक्ष की व्यवस्था पूर्व सूचना व उपलब्धता के अनुसार की जाती है।

ऋषि उद्यान में दरी, गद्दे, तकिए एवं बर्तन उपलब्ध हैं, शेष दैनिक उपयोग की वस्तुएँ यथा मंजन, ब्रश, साबुन, तेल, दवाएँ, बिछाने-ओढ़ने की चादरें, लिखने के लिए संचिका (नोटबुक), लेखनी, करदीप (टार्च) आदि को साधक अपने साथ लाएँ। वस्त्र सादगी एवं शिष्टाचार के अनुकूल हों, आभूषणों एवं सुगन्धित द्रव्यों का उपयोग न हो। आपके पास योगदर्शन हो तो साथ लाएँ। सतर्कता की दृष्टि से कीमती वस्तुएँ साथ न लायें। यदि आपको कोई संक्रामक रोग, तेज खांसी, दमा, मिर्गी आदि मानसिक रोग, वायु विकार या अन्य गंभीर रोग हो, तो कृपया शिविर में आना स्थगित रखें। यदि अपने कार्य स्वयं न कर सकते हों तो सहायक साथ में लायें। अजमेर या निकटवर्ती स्थल (पुष्कर) देखना चाहें, तो शिविर से पूर्व या पश्चात् अतिरिक्त समय निकाल कर आयें। लौटने का रेल-आरक्षण शिविर में आने से पूर्व करवा लें। अजमेर पहुँचने की सूचना घर पर देनी हो तो शिविर स्थल में प्रवेश से पहले दे देवें। खाने पीने की वस्तुएँ साथ न लावें।

यह शिविर परोपकारिणी सभा, अजमेर के सौजन्य से आयोजित किया जा रहा है। शिविर शुल्क १००० रु. मात्र जमा करना होगा। शिविर में भाग लेने वालों को शिविर के प्रारंभ दिनांक को सायं चार बजे तक शिविर स्थल ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर में पहुँच जाना आवश्यक है क्योंकि इसी दिन शाम को शिविर के अनुशासन एवं विभिन्न व्यवस्थाओं संबन्धी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ दी जाएँगी। शिविर का समापन अन्तिम दिन दोपहर एक बजे तक होगा। शिविर समाप्ति से पूर्व जाने की अनुमति नहीं दी जायेगी।

शिविर से आपका जीवन श्रेष्ठतर व पवित्रतर बने, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

स्वामी विष्वङ्ग परिव्राजक
संयोजक

ओममुनि
मन्त्री

ऋषि उद्यान शिविर स्थल पर पहुंचने के लिए फॉयसागर की ओर जाने वाली सिटी बस या ऑटो-रिक्शा, रेलवे स्टेशन व बस स्टैण्ड से (वाया-आगरा गेट/फव्वारा चौराहा) सर्वदा सुलभ रहते हैं।

दूरभाष : ०१४५-२४६०१६४
email:psabhaa@gmail.com

लेखकों से निवेदन

परोपकारी में उन लेखों, कविताओं, रचनाओं को स्थान दिया जाता है, जो **मौलिक व अप्रकाशित** हों। अतः सभी लेखकों से निवेदन है कि वे अपनी उन्हीं रचनाओं को भेजें जो मौलिक व अप्रकाशित हों।

अनेक लेखक मौलिक व अप्रकाशित रचना तो भेजते हैं, किन्तु उसे एक साथ **अनेक पत्रिकाओं को भेजते हैं।** अतः लेखकों से यह भी निवेदन है कि वे कृपया परोपकारी को वे ही रचना भेजें, जो अन्य पत्रिकाओं के लिए न भेजी हों। परोपकारी में छपने के बाद यदि अन्यत्र भेजना चाहें तो यह उनकी इच्छा पर निर्भर करता है।

कृपया लेख के अन्त में अपना **पूरा पता व चल-दूरभाष संख्या अवश्य लिखें।** लेख के स्वीकृत-अस्वीकृत होने की सूचना चल-दूरभाष पर संक्षिप्त संदेश द्वारा प्रेषित कर दी जायेगी। **परोपकारिणी सभा द्वारा रचनाओं के लिए किसी प्रकार का भुगतान नहीं किया जाता है।**

रचयिता अपनी रचना की एक प्रति कृपया अपने पास रखकर भेजें, क्योंकि **अस्वीकृत रचनायें डाक द्वारा लौटाई नहीं जाती हैं।** स्वीकृत रचना परोपकारी के किसी आगामी अङ्क में देखी जा सकती है। रचना के प्रकाशन में छः माह या अधिक समय भी लग सकता है, अतः कृपया तब तक रचना को अन्यत्र न भेजें। -संपादक

विद्ययाऽमृतश्नुते

तपेन्द्र वेदालंकार, आई. ए. एस. (सेवानिवृत्त)

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के मुक्तिविषय में महर्षि दयानन्द जी महाराज योग-दर्शन का प्रसंग देते हुए अविद्या का लक्षण लिखते हैं, ''(अनित्य) अनित्य अर्थात् कार्य जो शरीर आदि स्थूल पदार्थ तथा लोकलोकान्तर में नित्यबुद्धि; तथा जो (नित्य) अर्थात् ईश्वर, जीव, जगत् का कारण, क्रिया क्रियावान्, गुण गुणी और धर्म धर्मी हैं, इन नित्य पदार्थों का परस्पर सम्बन्ध है, इनमें अनित्य बुद्धि का होना, यह अविद्या का प्रथम भाग है।

तथा (अशुचि) मल-मूत्र आदि के समुदाय दुर्गन्धरूप मल से परिपूर्ण शरीर में पवित्र बुद्धि का करना और उनका चरणामृत पीना; एकादशी आदि मिथ्या व्रतों में भूख-प्यास आदि दुःखों का सहना, स्पर्श इन्द्रिय के भोग में अत्यन्त प्रीति करना इत्यादि अशुभ पदार्थों को शुद्ध मानना और सत्यविद्या, सत्यभाषण, धर्म, सत्संग, परमेश्वर की उपासना, जितेन्द्रियता, सर्वोपकार करना, सबसे प्रेमभाव से वर्तना आदि शुद्ध व्यवहार और पदार्थों में अपवित्र बुद्धि करना यह अविद्या का दूसरा भाग है।

तथा दुःख में सुखबुद्धि अर्थात् विषयतृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक, ईर्ष्या, द्वेष आदि दुःखरूप व्यवहारों में सुख मिलने की आशा करना, जितेन्द्रियता, निष्काम, शम, सन्तोष, विवेक, प्रसन्नता, प्रेम, मित्रता आदि सुखरूप व्यवहारों में दुःख-बुद्धि करना, यह अविद्या का तीसरा भाग है। इसी प्रकार अनात्मा में आत्मबुद्धि अर्थात् जड़ में चेतन-भावना और चेतन में जड़भावना करना अविद्या का चतुर्थ भाग है।

परन्तु विद्या अर्थात् पूर्वोक्त अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्मा में अनित्य, अपवित्रता, दुःख और अनात्मबुद्धि होना तथा नित्य, शुचि, सुख और आत्मा में नित्य, पवित्रता, सुख और आत्मबुद्धि करना यह चार प्रकार की विद्या है।''

महर्षि सत्यार्थप्रकाश के नवम समुल्लास में लिखते हैं,

वेत्ति यथावत् तत्त्वं पदार्थस्वरूपं यया सा विद्या
यया तत्त्वस्वरूपं न जानाति
भ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चिनोति सा अविद्या

जिससे पदार्थों का यथार्थस्वरूप बोध होवे वह 'विद्या' और जिससे तत्त्वस्वरूप न जान पड़े, अन्य में अन्य बुद्धि होवे, वह 'अविद्या' कहाती है।'

विद्या चाऽविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतमश्नुते।।

अर्थ करते हुए महर्षि लिखते हैं, ''**जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है, वह अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तर के 'विद्या' अर्थात् यथार्थज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है।**'' महर्षि कर्म व उपासना को अविद्या कहने का कारण बताते हुए लिखते हैं, ''**कर्म और उपासना 'अविद्या' इसलिए है कि वह बाह्य और अन्तर क्रियाविशेष नाम है, ज्ञान विशेष नहीं।**''

व्यवहारभानु में महर्षि लिखते हैं, ''**जिससे पदार्थ को यथावत् जानकर न्याययुक्त कर्म किये जावें, वह विद्या और जिससे किसी पदार्थ का यथावत् ज्ञान न होकर अन्यायरूप कर्म किये जावें वह अविद्या कहाती है।**'' आर्योद्देश्यरत्नमाला अनुसार, ''जो विद्या के विपरीत भ्रम, अन्धकार और अज्ञानरूप है, इसलिए इसे अविद्या कहते हैं। जिसमें ईश्वर से ले के पृथिवीपर्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान होकर उनसे यथायोग्य उपकार लेना होता है, इसका नाम विद्या है।''

यह चार प्रकार की अविद्या संसार के अज्ञानी जीवों का बन्धन का हेतु होके उनको सदा नचाती रहती है। अपवित्र मिथ्याभाषणादि कर्म, पाषाणादिमूर्त्यादि की उपासना और मिथ्याज्ञान से बन्ध होता है। अविद्या अन्यायरूप कर्म कराती है तथा किसी भी पदार्थ का यथावत् ज्ञान नहीं कराती।[१] अविद्या भ्रम, अन्धकार व अज्ञानरूप है। अविद्या से सांसारिक बन्धन होता है, सही कर्म व सही उपासना नहीं हो सकती, फलतः संसार के कार्य सही प्रकार से नहीं चल सकते। अज्ञान से दुष्कर्म होने से पाप ही होता है, उसी के संस्कार बनते हैं, अगला जन्म भी वैसा ही प्राप्त

होता है, जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है, जीव दु:खों में फँसा रहता है। अच्छे समाज का भी निर्माण नहीं होता।

पवित्र कार्य, पवित्रोपासना और पवित्र ज्ञान से ही मुक्ति होती है।[२] विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से ही मोक्ष प्राप्त होता है। विद्या से ही पदार्थों का यथार्थस्वरूप बोध होता है। न्याययुक्त कर्म भी विद्या से ही किये जाते हैं। अत: महर्षि ने आर्यसमाज का आठवाँ नियम निर्धारित किया -अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये। स्पष्ट है कि महर्षि ने इस नियम से न केवल समाज के सुखी होने की ओर इंगित किया है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को मुक्ति की ओर बढ़ने का प्रयत्न करने का भी उपदेश दिया है। व्यक्ति विद्यायुक्त होगा तो उसके कर्म, चिन्तन, भाव विद्यायुक्त होंगे, सही होंगे, स्वयं एवं समाज के लिए सुखद होंगे। फलत: समाज भी सुखी होगा-प्रसन्न होगा। अत: महर्षि के आदेश अनुसार अविद्या का नाश एवं विद्या की वृद्धि करना प्रत्येक आश्रमस्थ व्यक्ति के लिए आवश्यक है तथा उसके आश्रम के अनुकूल सत्कर्मों को करते हुए अच्छे समाज के निर्माण व मोक्ष की ओर बढ़ते जाना उद्देश्य है।

इस नियम की पालना के लिए जहाँ व्यष्टिरूप से व्यक्ति को स्वाध्याय, सत्संग, साधना करना आवश्यक है वहीं आर्यसमाज विशेषत: उसकी संस्थाओं का दायित्व है कि इस प्रकार की व्यवस्था की जावे कि सामान्यजनों को भी अविद्या का स्वरूप, उसके अवगुण पता चलें जिससे वे अविद्यायुक्त कर्मों से दूर रह सकें तथा अपना जीवन सफल बना सकें व अच्छे समाज का-आर्यसमाज का निर्माण कर सकें। २० नवम्बर १८७९ से ५ मई१८८० तक महर्षि दयानन्द जी महाराज काशी में विजयनगर महाराजा के आनन्दबाग में ठहरे थे। जीवनचरितकार लिखते हैं, ''जहाँ आर्यसमाज नहीं है, वहाँ अपने धार्मिक जीवन को परिपुष्ट बनाने के लिए आर्यजन क्या उपाय करें, तो महाराज ने उत्तर दिया कि यदि कोई आर्य अकेला हो तो स्वाध्याय करे, दो हों तो आपस में प्रश्नोत्तर और संवाद करें और तीन या अधिक हों तो परस्पर सत्संग और किसी धार्मिक ग्रन्थ का पाठ करें।''

अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि मनुष्यों में, समाज में करने का सशक्त माध्यम है प्रचार। प्रचार के लिए उपदेशक, भजनोपदेशक तथा पुरोहितों की महती भूमिका है। आज अधिकांश उपदेशक स्वयं स्वाध्याय कर या उपाधि प्राप्त कर स्वेच्छया, स्वयं की भावना से ऋषि-ऋण उतारने के लिए प्रचार हेतु प्रयत्नशील हैं। भजनोपदेशकों की तो कोई डिग्री भी हो, मुझे ध्यान नहीं, वे परिश्रम कर अधिकांशत: गुरु-शिष्य परम्परा व अपने स्वयं के पुरुषार्थ से वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए अपने आप को आहूत किये हुए हैं। यही स्थिति पुरोहितों की है जो कि प्रचार का महत्त्वपूर्ण अंग हैं, जिन पर परिवारों की श्रद्धा होती है। यज्ञ करने, यज्ञोपदेश करने, संस्कार करने-सुख-दु:ख के अवसरों पर हमारे पुरोहित ही व्यक्ति व परिवार के साथ खड़े मिलते हैं एवं वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार हर अवसर पर करते हैं।

विद्या के प्रसार से अविद्या का नाश होता है, अत: उपदेशक, भजनोपदेशक व पुरोहित तैयार करने, उनसे संवाद करने, बुरे समय में उन्हें सामाजिक सुरक्षा देने तथा उन्हें संस्थाओं में भागीदारी देने के लिए आर्य संस्थाओं को गम्भीर प्रयास करने होंगे। पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी ने सर्वप्रथम उपदेशक श्रेणी चलाने का आन्दोलन किया था तथा १८८९ में अपने मकान पर ही कक्षाएँ प्रारम्भ कर दी थीं। तत्पश्चात् अगले वर्ष आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य उपदेशक पाठशाला खोली थी। डॉ. रामप्रकाश जी अनुसार १८९५ में तो आर्य प्रतिनिधि सभा ने अपना प्रथम उद्देश्य ही यह घोषित किया था, **''वेदों तथा अन्य प्राचीन शास्त्रों की शिक्षा प्रदान करने और आर्य उपदेशक तैयार करने के लिए विद्यालय स्थापित करना।''**[३] आज भी प्रतिनिधि सभाओं के द्वारा उपदेशक विद्यालय खोले जाने, उपलब्ध उपदेशक विद्यालयों को और प्रभावी बनाकर चलाने की आवश्यकता है। साथ ही प्रतिनिधि सभाओं व परोपकारिणी सभा के स्तर पर उनके आमुखीकरण के कार्यक्रम व कार्यशालाएं आयोजित किये जाने की आवश्यकता है, जिससे प्रचार में उन्हें आ रही समस्याओं का भी पता चले तथा उनके सुझाव-जो धरातल की वास्तविक स्थितियों के अनुभव पर आधारित होंगे-भी प्राप्त हो सकें।

भजनोपदेश का सामान्य जन, आर्यजन, विशिष्ट जन-सभी पर विशेष प्रभाव पड़ता है, क्योंकि संगीत कान्तासम्मित

उपदेश की श्रेणी में आता है। हम छोटे-छोटे थे। हमारे गाँव में कई-कई दिन तक भजनोपदेश होते थे। सर्व श्री जसवन्त सिंह जी, आशाराम जी, कुं. वीरेन्द्र जी वीर, पं. शोभाराम प्रेमी, अभयराम जी रेडियोसिंगर, मामचन्द जी, खेमचन्द जी, ब्रजपाल जी कर्मठ, पृथ्वीसिंह जी बेधड़क आदि भजनोपदेशक आया करते थे। गाँव में जागृति इतनी थी कि होली के अवसर पर भी आर्यसमाज का उत्सव रखा गया तो लोगों ने रंग न खेलकर आर्यसमाज के उत्सव को तन्मयता से सुना था। अब स्थितियाँ बदल गयी हैं। उन स्थितियों को भजनोपदेश ही ठीक कर सकता है। अत: आवश्यकता है कि प्रतिनिधि सभाएँ भजनोपदेश के सम्बन्ध में नीति तैयार करें। नये भजनोपदेशक व उपदेशिका बनें, पुरानों की सहभागिता से कार्यशालाएँ हों। मेरे ज्ञान अनुसार भजनोपदेशक तैयार करने का कोई विद्यालय नहीं अपितु गुरु-शिष्य परम्परा से ही यह विद्या चली आ रही है। गुरु-शिष्य परम्परा में हमारी सभाएँ व संस्थाएँ आर्थिक सहयोग द्वारा सहयोगी हो सकती हैं और भजनोपदेशक विद्यालय भी क्यों नहीं खोले जा सकते, खोले जा सकते हैं, जिनमें छोटी अवधि के पाठ्यक्रम हों तथा संगीत सम्बन्धी जानकारी के साथ-साथ सिद्धान्तों व विभिन्न विधाओं की जानकारी दी जावे। आज कोई स्वामी भीष्म जी या अन्य पुराने प्रसिद्ध उपदेशक की पुस्तकें खरीदना चाहे तो कहीं एक जगह उपलब्ध नहीं होतीं। एक पुस्तकालय भी बनाया जा सकता है। मिले-जुले अच्छे भजनों की पुस्तकें प्रकाशित की जा सकती हैं। आज सी.डी. आदि का जमाना है, परन्तु भजनोपदेशक स्वयं ही प्रयास करते हैं। सभाओं का सहयोग अपेक्षित है। भजनोपदेशकों की स्वयं की संस्था साल में एकत्र होकर चर्चा करती है। सभाओं का भी कम से कम वर्ष में एक बार भजनोपदेशकों से या उनके प्रतिनिधियों से विभिन्न विषयों-प्रचार-प्रसार, सामाजिक सुरक्षा आदि पर संवाद होना चाहिये।

आर्यसमाज भवनों में रहकर या व्यक्तिगत रूप से पुरोहितगण समाज में प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। यज्ञ के प्रति समाज की, परिवारों की श्रद्धा है, संस्कार सभी कराना चाहते हैं, पुरोहित की परिवार तक पहुँच है तथा प्रचार का इससे अच्छा साधन हो नहीं सकता। पुरोहितों से सभाओं का नियमित संवाद व समन्वय होना चाहिये। पुरोहितों के लिए सैद्धान्तिक पाठ्यक्रम व क्रियात्मक पाठ्यक्रम होना चाहिये। उनकी भी कार्यशालाएँ होनी चाहिये। वेदालंकार करते हुए संभवत: १९७३ में गाँव आया तो प्रसिद्ध आर्यसमाज बसेड़ा ने यजुर्वेद पारायण यज्ञ कराने को कहा। मना नहीं किया जा सकता था, परन्तु सत्य यह है कि वेदालंकार के पाठ्यक्रम में या बाहर कहीं यज्ञ कराने की आधिकारिक प्रक्रिया पढ़ायी या करायी नहीं जाती थी। मैंने यज्ञ कराया परन्तु अन्य स्थानों पर यज्ञों में देखी गयी प्रक्रिया के आधार पर या पुस्तक से पढ़कर-समझकर। कई बातें आयी होंगी पर शायद यज्ञ-प्रेमियों ने मेरे वेदालंकार ज्ञान की तथाकथित प्रामाणिकता को मानकर उन्हें ही ठीक समझ लिया होगा।

उपदेशक, भजनोपदेशक व पुरोहित आज के युग में उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण हैं जितने सौ साल पहले रहे होंगे, क्योंकि प्रचार का सबसे सशक्त माध्यम वह होता है जिसमें आमने-सामने का सम्पर्क हो। उसी से व्यक्ति में श्रद्धा होती है, श्रद्धा से ही उपदेश हृदय की गहराइयों में उतरता है, हृदय में उतरा हुआ उपदेश ही दीर्घकालीन प्रभाव रखता है, वह ही सिद्धान्तों के प्रति निष्ठा को मजबूत करता है। अत: सार्वदेशिक, प्रतिनिधि सभाएँ, परोपकारिणी सभा व अन्य सक्षम संस्थाएँ आगे आयें, चिन्तन तो करें, यदि उपयोगी लगे तो सुझावों पर कार्यवाही कर लें।

टिप्पणी

१. महर्षि दयानन्द जी महाराज २. महर्षि दयानन्द जी महाराज ३. पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी-डॉ. रामप्रकाश

जो विद्वान् लोग परोपकार बुद्धि से विद्या का विस्तार करने, सुगन्धि, पुष्टि, मधुरता रोगनाशक गुणयुक्त पदार्थों का यथायोग्य मेल, अग्नि के बीच में उनका होम कर, शुद्ध वायु, वर्षा का जल वा ओषधियों का सेवन करके शरीर को आरोग्य करते हैं वे इस संसार में अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५८

परोपकारी के सुधी पाठकों के लिए आवश्यक सूचना

परोपकारी शुल्क भेजते समय नये या पुराने ग्राहक के उल्लेख के साथ-साथ ग्राहक संख्या अवश्य लिखें, अन्यथा शुल्क जमा करने में कठिनाई आती है। फलस्वरूप पाठकों के पास पत्रिका नहीं पहुँच पाती है। ऐसे ही अपना नाम हटवाते व जुड़वाते समय दूरभाष संख्या सहित अपना पूरा विवरण लिखकर भेजें। ई.एम.ओ. के द्वारा शुल्क भेजने वाले ग्राहक भी सन्देश के साथ अपनी ग्राहक संख्या सहित पूरा विवरण भेजें। **परोपकारी पत्रिका कार्यालय से निरन्तर भेजी जाती है, फिर भी जिन लोगों के पास पत्रिका का कोई अंक प्राप्त ना हुआ हो तो कृपया पत्र या दूरभाष द्वारा हमें सूचित करें, ताकि हम वह अंक पुनः भेज सकें, साथ ही अपने डाकघर में इसकी जाँच आदि भी करें।**

धनराशि भेजने हेतु सूचना

परोपकारिणी सभा महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित सभा है एवं उनके कार्यों को आगे बढ़ाने के लिय कृत-संकल्प है। सभा द्वारा ऋषि के स्वप्नानुरूप गुरुकुल, संन्यास एवं वानप्रस्थाश्रम, ध्यान शिविर, वैदिक साहित्य का प्रकाशन, देश में प्रचार, परोपकारी पत्रिका के माध्यम से जन-जागरण, भव्य अतिथिशाला, भोजनशाला आदि अनेक प्रकल्पों का संचालन हो रहा है। ये सभी कार्य आर्यजनों के सात्विक दान से ही होते हैं। अतः दानी महानुभावों से निवेदन है कि वेद, ईश्वर, दयानन्द के इस कार्य में अपना सहयोग अवश्य प्रदान करें।

चैक, ड्राफ्ट, धनादेश (मनीआर्डर) द्वारा राशि भेजने वाले उन पर **'परोपकारिणी सभा'** अवश्य लिख दें। दानी महानुभाव ऑनलाइन भी राशि जमा करवा सकते हैं। भारतीय स्टेट बैंक में एक सहस्त्र तक की राशि जमा कराने वाले **२५ रु. बैंक सेवा शुल्क के रूप में अतिरिक्त** जमा करवाने की कृपा करें। कृपया, राशि निम्नांकित बैंकों में ऑनलाइन भिजवाकर, जमा कराई गई स्लिप के साथ उद्देश्य लिखकर सभा कार्यालय को सूचित करवाने का कष्ट करें।

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-091104000057530 बैंक का नाम-आई.डी.बी.आई. बैंक, पावर हाउस के सामने, जयपुर रोड, अजमेर।

IFSC - IBKL0000091

२. बैंक बचत खाता (Savings) संख्या - 10158172715 बैंक का नाम - भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी बाजार, अजमेर।

IFSC - SBIN0007959

जैसे वेद के वेत्ता विद्वान् लोग वेदानुकूल मार्ग से परमेश्वर को जानकर उत्तम ज्ञान से उसका सेवन करते हैं, वैसे ही जगदीश्वर सब को उपासनीय अर्थात् सेवन करने के योग्य है, वैसे ज्ञान के विना ईश्वर की उपासना कभी नहीं हो सकती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.४१

वैचारिक क्रान्ति के लिए सत्यार्थ प्रकाश पढ़ें।

गुरुदत्त विद्यार्थी जयन्ती (२६ अप्रैल) पर विशेष

धन का डाह

पं. गुरुदत्त विद्यार्थी

पाण्डित्य के क्षेत्र में ऋषि दयानन्द के पश्चात् यदि कोई नाम आता है, तो वो पं. गुरुदत्त विद्यार्थी का है। तत्कालीन धुरन्धर विद्वान् भी यही बात एक स्वर से कहते हैं कि वेद के विषय में जो दृष्टि ऋषि दयानन्द की थी, वैसी दृष्टि उनके बाद केवल गुरुदत्त विद्यार्थी में पाई गई। पर क्या केवल पाण्डित्य!! नहीं, नहीं, सांसारिक मोह, लोभ, वासनाओं से कहीं दूर एक मुनि वृत्ति का व्यक्तित्व गुरुदत्त के नाम से जाना जाता था, इसीलिये मात्र २६ वर्ष के युवक को, जिसे कि उस उम्र में प्रकृति की सहज व्यवस्था के अनुसार विषय वासनाओं में सर्वाधिक आसक्त होना चाहिये था, उसे 'मुनिवर' की उपाधि से संबोधित किया जाता था। यह मात्र उपाधि नहीं, उनके गुणों का प्रभावीकरण सम्बोधन रूप में है और वह अपर्याप्त सा लगता है। क्यों? पाठक स्वयं विचारें, २६ वर्ष की आयु, चढ़ता यौवन, अंग्रेजी शिक्षा, विज्ञान जैसे गूढ़ विषय में दक्षता और उसके बाद कोई युवक सांसारिक जीवन को त्यागकर साधक बन जाये, अतिदुष्कर प्रतीत होता है। आयु बीत जाने पर तो प्रकृति स्वयं ही व्यक्ति को साधक बना देती है, पर भरे यौवन में योग की बातें, वो भी आधुनिक शिक्षा के चरम पर जाकर, शीश श्रद्धावश झुकने को मजबूर हो जाता है। खैर, गुरुदत्त जी का यह लेख उपरोक्त विवरण का साक्षी है।

इस लेख को पढ़कर प्रत्येक को यही लगेगा कि गुरुदत्त शायद उसी की समस्याओं के बारे में बात कर रहे हैं, क्योंकि आज गुरुदत्त शास्त्रों की पंक्तियों को छोड़ जनसामान्य की आन्तरिक समस्याओं में उतर आये हैं। धन लोभ में आकण्ठ डूबकर भी उपरिमन से विरक्ति की बातें की जा सकती हैं, पर जब अनुभव व्यावहारिक जीवन में प्रयोग कर हृदय से बोलता है तो वो बिलकुल ऐसा ही होता है जैसा पं. गुरुदत्त का यह लेख। - *सम्पादक*

इस लेख में इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि ''सांसारिक धन का कमाना कहाँ तक एक उचित और मनोरंजक काम है।'' मनु जी महाराज अध्याय २ श्लोक-१३ में कहते हैं-

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।।

जो लोग सांसारिक धन दौलत और विषय सुख में फँसे हुए नहीं हैं केवल वही सत्य धर्म का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जो व्यक्ति इस उद्देश्य को प्राप्त किया चाहता है उसका कर्त्तव्य है कि वह वेद की सहायता से सत्य धर्म का निर्णय करे, क्योंकि वेदों की बिल्कुल सहायता न लेने से सत्य धर्म का स्पष्ट और पूर्ण निरूपण हो नहीं सकता।

ऊपर दिये गये श्लोक में मनु जी तीन सिद्धान्त प्रतिष्ठित करते हैं। पहला कि अर्थ (धन) की तलाश सत्य धर्म के ज्ञान की प्राप्ति में बाधा देती है, दूसरे काम (विषयसुख) की तलाश भी उसकी प्राप्ति के विरुद्ध है और अन्ततः जो लोग सत्य धर्म का निर्णय करना चाहते हैं उनके लिये वेदों का अध्ययन आवश्यक है।

मनु जी की पहली और दूसरी प्रतिज्ञा को एक ही माना जा सकता है क्योंकि प्रायः हालातों में विषयसुख की तलाश धन की तलाश के साथ ऐसी सम्बद्ध होती है कि जब तक धन की अपरिमित राशि पहले से ही मौजूद न हो, विषयसुख की परितृप्ति प्रायः असम्भव होती है। इसलिये हम मनु जी के पहले आधे श्लोक का आशय यह लेते हैं कि धन की अपरिमित तलाश करने से धर्म का सत्य ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। यही इस वर्तमान लेख का विषय है। इस श्लोक के दूसरे भाग पर हम किसी और समय विचार करेंगे।

यदि मनु जी इस वर्तमान उन्नीसवीं शताब्दी में, जिस शताब्दी में कि चारों ओर से जीवित रहने के लिये शुद्ध या **''योग्यतमस्य उद्वर्तन''** की ध्वनि आ रही है, जो ध्वनि यह कहती है कि धन या माल या द्रव्य के रूप में कुछ व्यावहारिक कार्य किया जाय-जीवित होते तो उनका अपने

ऊपर लिखे श्लोक के प्रथम भाग में प्रतिष्ठित प्रतिज्ञा का जनता में विघोषित करना एक भारी साहस और वीरता का काम होता, क्योंकि इसका वास्तविक अर्थ यह होगा कि वर्तमान काल के धन की व्यावहारिक तलाश में निमग्न निर्मल धर्म की सच्चाइयों को समझने के अयोग्य हैं। निस्सन्देह मनु जी का यह वचन बहुव्यापक और अपमानजनक देख पड़ता है। फिर भी इसमें झूठ रत्ती भर नहीं है। क्योंकि धर्म की ज्योति केवल एकाग्रता, योग, मानसिक शान्ति और ध्यान की भूमि पर ही उदय होती है। धन कमाने की सिर तोड़ कोशिश, जिसमें कि आधुनिक व्यावहारिक संसार सिर से पैर तक डूबा हुआ है, इन मानसिक स्थितियों की वृद्धि के लिये ऐसी हानिकारक है कि मग्न व्यावहारिक संसार के लिये यह आवश्यक हो गया है कि वह सच्चाई, धर्म और उच्चतर मनुष्य-प्रकृति के निमित्त अपनी वर्तमान अवस्था पर पुनर्विचार करे और स्पर्धा, प्रतियोगिता और उच्चाकांक्षा के प्रबल नियमों के कारण पैदा होने वाले परिश्रम में कूद पड़ने के पहले एक बार इस पर विचार कर ले। यह सच है कि भौतिक उन्नति के लिये इन प्रबल उत्तेजनों के प्रोत्साहन से मनुष्य सच्चाई के प्रति अपने उच्च कर्त्तव्यों को भूल गया है। इसलिये यह सर्वथा सत्य है कि बड़े-बड़े नामी विज्ञान-विशारद भी इस प्रवृत्ति के भयानक और लज्जाजनक परिणामों का अनुभव करने लगे हैं। देखिये कर्नल विश्वविद्यालय के प्रधान डॉक्टर ह्वायट महाशयों लिखते हैं-

''जब कोई कपट या दौरात्म्य प्रकाश में आता है तो हम बहुत भड़क उठते हैं, और समय की खराबी पर रोना-पीटना आरम्भ होता है, परन्तु मेरे मित्रो! ये कपट और दौरात्म्य समय की खराबियाँ नहीं हैं। ये नागरिक समाज के उपरितल पर निकले हुए केवल फफोले हैं। परमात्मा का धन्यवाद है कि उनको निकालकर उपरितल पर फेंक देने के लिये अभी काफी जीवनशक्ति मौजूद है। रोग सबके नीचे प्रबल रूप से फैल रहा है।

वह रोग क्या है? मेरा विश्वास है कि यह सबसे पहले सच्चाई को सच्चाई स्वीकार करने में उदासीनता है। दूसरे संशय, इससे मेरा अभिप्राय इस या उस मत को स्वीकार करने में अयोग्यता से नहीं, प्रत्युत उस संशय से है जो इस बात को मानने से इन्कार करता है कि संसार में कोई ऐसी प्रबल, विशाल और पुण्यमय शक्ति है, जिसके बिना कि हम सत्य को कदापि नहीं पा सकते। तीसरे नास्तिकता, इससे मेरा अभिप्राय इस या उस प्रधान कर्म के प्रति भक्ति के अभाव से नहीं, प्रत्युत उसके प्रति भक्ति के अभाव से है जो कि सब धर्मों का आधार है, अर्थात् यह भाव कि पवित्र और पुण्यमय सब कहीं एक समान है और अन्तत: **जड़वाद, जिससे मेरा अभिप्राय ब्रह्माण्ड की इस या उस वैज्ञानिक कल्पना (थ्योरी) से नहीं, बल्कि पुण्य के केवल बाह्य छिलके और भूसे के प्रति भक्ति से, स्थान और धन के लिये उस संग्राम से, केवल भौतिक सुख और सम्पत्ति के प्रति उस श्रद्धा से जो कि मानव-हृदय से सारी देश-प्रीति को नष्ट कर देती है और जो कि उस भाव के अत्यन्त प्रतिकूल है जिससे वैज्ञानिक साधन को बल मिलता है।''**[१]

पाठक, यह एक नामी विज्ञानशास्त्री की राय है कि समाज चार घातक रोगों, अर्थात् उदासीनता, संशय, नास्तिकता और जड़वाद से पीड़ित है। यह स्पष्ट ही है कि इन सब का कारण प्रबल प्रकृति और लक्ष्मी की रिवाजी पूजा है। उत्साहशील पाठक के चित्तपट पर यह सच्चाई अधिक सुगमता से अंकित करने के उद्देश्य से आओ हम वकीलों, वैद्यों, साहूकारों, वणिकों, इन्जीनियरों, ठेकेदारों, पादरियों, अध्यापकों, क्लर्कों और आजकल के असंख्य प्रचलित व्यवसायों से जीवन का निर्वाह करने वाले लोगों पर, जिनकी कि हमारे अपने देश में भी कुछ कमी नहीं, दृष्टि डालें। इन सबका विशेष उद्देश्य यही है कि अपने-अपने व्यवसायों के द्वारा चमकते हुए सोने का ढेर इकट्ठा करें। यह सोना प्रतियोगिता के रोग में ग्रस्त व्यावहारिक मनुष्य की विकृत दृष्टि को अति लुभायमान प्रतीत होता है। इन खेदजनक व्यवसायों के अस्तित्व के लिये उपकारशीलता या युक्तिसंगत उपयोगिता के आधार पर कोई युक्तिसंगत समाधान ढूँढे से भी नहीं मिल सकता। इन व्यवसायों का कदापि जन्म न होता, यदि ये कुत्सित धन को लाने वाले न होते। मक्खियाँ गुड़ की डली पर इस कसरत से इकट्ठी होकर नहीं भिनभिनाती जिस कसरत से कि वकील और व्यापारी, वैद्य और ठेकेदार लक्ष्मी के

मन्दिर में इकट्ठे होते हैं। **यह बात अक्षरशः सत्य है कि रुपया ऐसा ईश्वर है जिसकी पूजा संसार के स्वामी ईश्वर से भी बढ़कर हो रही है। केवल इतना ही नहीं, धन का डाह प्रायः सभी को लग रहा है।** प्रत्युत सांसारिक धन का कमाना ही प्रधान विषय बन रहा है। एक ओर एक सुधारक होने का दम भरने वाला व्यक्ति स्वदेश की अत्यन्त दरिद्रता और उसके फलस्वरूप चारों ओर फैले हुए क्लेश, पाप और अपराध का दुखड़ा रो रहा है। स्वदेश को कला-कौशल से शून्य देखकर उसे भारी दुःख हो रहा है। उसे सदा यही चिन्ता रहती है कि किस प्रकार उसके देश की भौतिक समृद्धि के साधनों में सन्तोषजनक उन्नति हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये वह बड़ी मुश्किल से एक संस्था स्थापित करता है, परन्तु धन की पर्याप्त सहायता न पहुँचने के कारण वह इसको चला नहीं सकता। इस विफलता से उसे अवर्णनीय दुःख होता है। वह सुधारक एकान्त में बैठकर यों सोचता है-

हमारा देश निर्धन है क्योंकि हमारे पास धन नहीं, पाप और क्लेश फैल रहे हैं क्योंकि हमारे पास धन नहीं, कला कौशल की उन्नति नहीं हो सकती क्योंकि हमारे पास धन नहीं, संस्थाएँ दीर्घजीवी और सफल नहीं हो सकतीं क्योंकि हमारे पास धन नहीं।

चारों तरफ से धक्के खाकर यशस्काम सुधारक फिर धन के प्रश्न की ओर आता है। वह अपनी विशाल भौतिक बुद्धि को इसी प्रश्न को हल करने में लगाता है। अब उसको यह विचार सूझता है कि केवल व्यक्तिगत उत्साह से ही उसका देश धनवान् हो सकता है, पर व्यक्ति बड़े-बड़े कामों को बिना धन के कैसे हाथ में ले सकते हैं? शायद यह प्रश्न और तरह से भी हल हो सकता है। वह स्वदेश में कलों का प्रचार करना चाहता है जिनसे धन-दौलत खूब पैदा हो, परन्तु कलें मँहगी हैं, और एक निर्धन देश उन्हें खरीद नहीं सकता। या दैवयोग से हमारा सुधारक रक्षित व्यापार का पक्षपाती (प्रोटेक्शनिस्ट) है तो वह कदापि यह पसन्द न करेगा कि स्वदेश का धन कलों आदि में बाहर जाए। उसकी यही कामना होगी कि स्वदेशी शिल्पकला की उन्नति और वृद्धि हो। सुधारक के दुर्भाग्य से प्रज्ञाहीन मानव-प्रकृति सुलभता पर गिरती है, इसलिये स्पर्धा सुधारक के ऐसी सावधानी से खड़े किये हुए व्यापार-रक्षा के भवन को अपने भयानक कुल्हाड़े के साथ भूतलशायी कर देती है।

अब जड़वादी तत्त्ववेत्ता को लीजिये। सभ्यता कैसी मनोहर वस्तु है। अतएव वह अपना दार्शनिक ज्ञान छाँटने की बाह्य रीतियों के अनुसार सभ्यता के प्रत्येक उपादान को अलग-अलग करता है और मालूम करता है कि सभ्यता की सारी रचना धन के आधार पर है। वाष्पीय नौका (स्टीमर), लोकोमोटिव इंजन, तार और डाक के प्रबन्ध, छापेखाने और मेहनत बचाने वाली कलें, सब धन के शक्तिशाली और आश्रय देने वाले हाथ के बिना केवल कोयला, लोहा, और रेत जैसी निकम्मी चीजें ही रह जायेंगी।

अकेले सुधारक और तत्त्वज्ञानी की ही बात नहीं। राजनीति विशारद, राजमन्त्री, पत्र-सम्पादक, सार्वजनिक वक्ता, सब के सब अन्त को इसी धन की समस्या पर आकर गिरते हैं। इस प्रकार सारा संसार क्या बातचीत और सम्भाषण में, क्या व्याख्यानों और सार्वजनिक सभाओं में, क्या गुप्त ध्यान और विचार की अवस्था में, बारम्बार ''धन, धन'' की ही ध्वनि निकालता है। यहाँ तक कि समाज की सारी रचना गूँज रही है और सारा वायुमण्डल इसी प्रकार के आभासों और शब्दों से भर रहा है।

पाठक! इस सभ्यता का दम भरने वाली समाज की अल्पकालिक दौड़धूप और क्षणिक चेष्टा को ध्यान पूर्वक देखिये। क्या आप नहीं देखते कि कम से कम पचहत्तर प्रतिशत मनुष्य जो सभ्य संसार में ख्याति लाभ करते हैं, उनका दारोमदार अधिकार की लालसा, भोगों (इन्द्रिय सुख) से प्रेम, मान से प्रीति, बड़े बनने की कामना, प्रतिष्ठा से प्रेम और दिखलावे से प्रीति पर होता है? क्या कारण है कि स्वामी अपने सेवकों से आज्ञा का पालन कराता है? क्या कारण है कि लोग सदा अपने से उच्च समाज के मण्डलों में विचरना चाहते हैं? यह क्या बात है कि इतने रईस और राजे, रायबहादुर या सरदार बहादुर की केवल खाली उपाधियों की प्राप्ति के लिये व्यर्थ भारी-भारी खर्च प्रसन्नतापूर्वक सहन करते हैं? केवल अधिकार, उच्च पदवी, मान, प्रतिष्ठा, दिखलावा और आनन्द के लिए और कौन सा शक्तिशाली इञ्जन है, जो इन नीच, अपरिमित और

स्वार्थपर कामनाओं को पूरा करने के लिये साधन उत्पन्न करता है? वह धन है।

फिर समाज के निचले स्तर की ओर ध्यान दीजिये, (निचले स्तर से मेरा अभिप्राय इन लोगों से है जो आचार की दृष्टि से नीचे हैं जरूरी नहीं कि वे सामाजिक दृष्टि से भी नीच हों)। देखो, सभ्य जीवन नामधारी सजीव शक्तियों की अन्धी दौड़ में मत्सरता, ईर्ष्या, स्पर्धा और प्रतियोगिता के भाव क्या काम कर रहे हैं? प्रतिदिन बढ़ती हुई मुकदमाबाजी, शिष्टजनों के आए दिन झगड़े, पुलिस और न्यायालयों की खराबियाँ, प्रतियोगिताओं में उम्मीदवारों को सफलता के लिये अपनी जान को जोखिम में डालना, ये सब इस बात की साक्षी दे रहे हैं कि मत्सरता, ईर्ष्या, स्पर्धा और प्रतियोगिता के नीच भावों ने, जो कि मनुष्य के लिए कदापि उचित नहीं, आधुनिक समाज में भारी गड़बड़ मचा रखी है। आपको ऐसा मनुष्य कहाँ मिलेगा जिसने अपनी उपकारशीलता से क्रोध और प्रतिहिंसा को दबा दिया हो? इस सभ्य समाज में ऐसा मनुष्य मिलना बहुत कठिन है। शायद कोई दरिद्रता से पीड़ित, दु:खों से दबा हुआ-जिसको अपनी विद्रोही प्रकृति की आज्ञाओं का पालन करने के लिए साधन नहीं मिलते, परन्तु जो दुर्भाग्य से निराशा और विषाद में फँस गया है- दु:स्वप्न और अशान्ति से जीवन के दिन काटता इधर-इधर मिल जाए। यदि उसमें निर्दय सभ्य समाज से बदला लेने की शक्ति होती तो वह कदापि इससे न चूकता, पर वह विवश है। तो क्या ये सब शक्तिशाली धन के तेज से अपील नहीं करते?

अनुकरण एक प्रमुख नियम है। इसी पर आधुनिक समाज का विशाल भवन खड़ा किया गया है। अनुकरण वह खम्भा है जिस पर कि समाज का प्रबल यन्त्र ठहरा हुआ है। रीति-रिवाज, प्रचलित प्रणाली की चोट और देह स्वभाव के डर का तो कहना ही क्या, जो सबके सब किसी न किसी प्रकार से पैतृक नियमों-अनुकरण से पैदा हुए हैं, धार्मिक विश्वास की बातों में या सम्मति देने की अवस्थाओं में भी संसार के नब्बे फीसदी मनुष्य उसी सर्वव्यापक नियम अनुकरण के अधीन हैं। अनुकरण की उसी वानर सदृश कार्य शक्ति के विषय में जे.एस. मिल साहब लिखते हैं-

''हमारे समय में समाज की उच्चतम श्रेणी से लेकर नीचतम श्रेणी तक प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार रहता है मानो वह किसी विरोधी और भयानक नीतिशास्त्रता की देख-रेख के नीचे है। न केवल उन्हीं बातों में जिनका सम्बन्ध कि दूसरों से है प्रत्युत उन बातों में भी जिनका सम्बन्ध कि खुद उन्हीं से है कोई व्यक्ति या परिवार अपने मन में प्रश्न नहीं करता कि मैं किस बात को अच्छा समझूँ? या कौन सी बात मेरी प्रकृति या अवस्था के अनुकूल होगी? या मुझमें जो सर्वोच्च और सर्वोत्तम है वह स्वतन्त्र कैसे रहेगा, या उसकी परिवृद्धि और विकास कैसे हो सकेगा? वह अपने मन में प्रश्न करता है कि मेरी प्रतिष्ठा के अनुरूप क्या है? मेरी स्थिति और आर्थिक अवस्था के लोग प्राय: क्या करते हैं? या (इससे भी बुरा) मेरे से ऊँची स्थिति और अवस्था के लोग प्राय: क्या करते हैं? मेरा प्रयोजन यह नहीं कि वे रिवाज को प्रवृत्ति से अच्छा समझते हैं, परन्तु वे रिवाज के सिवा प्रवृत्ति को और कोई वस्तु ही नहीं समझते। इस प्रकार उनका मन अपने आप अनुकरण का जुआ अपनी गर्दन पर रख लेता है। मनोरञ्जन की बातों में भी वे सबसे पहले अनुरूपता का ख्याल करते हैं। वे समुदायों में रहते हैं। जो काम प्राय: लोग करते हैं उन्हीं में से वे किसी एक को पसन्द करते हैं। रुचि की विशेषता और आचरण की विलक्षणता से वे ऐसे भागते हैं मानों कि वे अपराधी हैं। यहाँ तक कि अपनी ही प्रकृति का अनुकरण न करने की चोटों से उनमें अनुकरण करने के लिये कोई प्रकृति ही नहीं रहती। उनकी मानुषीय धारण शक्तियाँ कुम्हलाकर नष्ट हो जाती हैं। वे किसी प्रबल आकांक्षा या प्राकृत सुख का आनन्द लेने में असमर्थ हो जाते हैं। और न ही उनमें प्राय: कोई अपनी राय या निज विचार होते हैं। अब बतलाएँ कि क्या मानव-प्रकृति की यह अवस्था वांछनीय है?''

यह है अनुकरण की प्रबल शक्ति। कौन है जो इसके अलंघनीय प्रभाव का सामना कर सके? क्या कोई व्यक्ति निमग्न व्यावहारिक संसार को वकीलों, वैद्यों, इन्जीनियरों, ठेकेदारों और अन्य व्यवसायियों को धन के लिये पागल हुआ देख सकता है? क्या कोई मनुष्य तत्त्ववेत्ताओं, राजनीतिज्ञों और देशानुरागियों को तेजोमय सुवर्ण का एक

स्वर होकर गुणगान करते हुए सुन सकता है? क्या कोई सभ्यता के उत्सुक प्रशंसक को लक्ष्मी देवी की सर्वशक्ति सत्ता को अंगीकार करते हुए देख सकता है? क्या कोई सांसारिक सुख, शान्ति और हर्ष की गर्वित अभिलाषाओं को, अधिकार, प्रतिष्ठा और उपाधि के यशस्काम प्रेमियों को, अर्थदेवता के मन्दिर में जल चढ़ाते देख सकता है? क्या कोई क्रोध, प्रतिहिंसा, ईर्ष्या, स्पर्धा और मत्सरता, इन सबको अपनी संतुष्टि के साधनों की प्राप्ति के लिये दौलत के दरबार में हाथ बाँधे खड़ा देख सकता है? क्या कोई व्यक्ति ऐसा है जो यह सब कुछ देखता हुआ भी सोनारूपी परम प्रतापी सम्राट् के आगे राजभक्ति की सौगन्ध न उठाए?

अनुकरण की चोट से मनुष्य धन की तलाश में दाएँ से बाएँ धक्के खाता है। समाज एक भँवर के सदृश है, जिसमें जीवनरूपी समुद्र के सभी तैराक फँस जाते हैं, और जोर से इधर-उधर फेंके जाते हैं। आज यहाँ गिरे तो कल वहाँ पड़े, यहाँ तक कि मनुष्य केवल एक धन कमाने वाली मशीन बन जाता है। क्या समाज की यह दशा शोचनीय नहीं है?

देखो धन का प्रेम उच्च भावों का कितना खून करता है? कर्त्तव्य और स्वार्थ की आपस में मुठभेड़ है। धन की निग्रहकारिणी शक्ति सब बुराइयों की रक्षा करती है। उच्चतर मानव प्रकृति की आज्ञाओं की कुछ भी परवाह नहीं की जाती और उनको पाँव तले रौंदा जाता है। वैद्य और डॉक्टर लोग शरीर धर्म विद्या के ज्ञान के प्रसार और स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का जनता में प्रचार के स्थान में सादा से सादा रोगों और औषधियों को विदेशी नामों के वेश में छिपाते हैं और उपचार लेखों (नुस्खों) के गुप्त संकेत नियत करके उनके मिलाने और तैयार करने की विधियों को प्रकट नहीं होने देते। वैद्यों का असंख्य दल जो इस समय हमारे देश में मौजूद है, बुद्धिमत्ता के साथ रोगों की जड़ को उखाड़ने और तन्दुरुस्ती की सुन्दर कली को खिलाने के स्थान में दिन-रात बड़े यत्न से यही प्रार्थना करता है कि धनवान् और शक्तिशाली मनुष्य सदा कसरत से रोगग्रस्त हुआ करें। वकील लोग शान्तिमय मित्रता के भाव उत्पन्न करने और मेल-मिलाप को बढ़ाने के स्थान में झगड़े-रगड़े को बढ़ाते और प्रतिहिंसक विरोध या गर्वित आवेश को चमकाते हैं। वणिक जनता के प्रयोजनों और आवश्यकताओं को पूरा करने और माँग और माल के नियम पर न्यायपूर्वक कार्य करने के स्थान में जो कुछ उन्हें मिल सके, सब लूट लेते हैं, बहुत थोड़ा देते हैं, अपने व्यापार का व्यवस्था पत्र गुप्त रखते हैं और अनभिज्ञ ग्राहकों को अशुद्ध माल देकर धोखा करते हैं। यहाँ तक कि उपदेशक और पादरी भी, जिनका काम सीधी-सादी सच्चाई और आचार की सान्त्वना देने वाली बातें बताना और धार्मिक पुण्यशीलता और आध्यात्मिक प्रकाश के पवित्र सुखों को फैलाना होना चाहिये, धन कमाने की बड़ी-बड़ी युक्तियाँ पढ़कर प्रमुदित होते हैं और अपने दीर्घ, अन्धकारमय, दम्भ दूषित धर्मोपदेशों को गुह्य प्रलाप के साथ लपेट देते हैं। ये ऐसे उपदेश होते हैं जिनको कि वे आप भी न समझते हैं और न समझ सकते हैं।

इस प्रकार इतना ही नहीं कि समाज में जो रुपया इकट्ठा करने का सहजावबोध पैदा हो गया है, उसने वैद्य और उपदेशक सबको एक जैसा अपने कर्त्तव्य और व्यवसाय से पथभ्रष्ट कर दिया है। इससे भी अधिक और घोर पाप हैं जिनमें कि समाज केवल धन प्राप्ति के लिये ही डूबा हुआ है। एक धनवान् मदिरा विक्रेता या एक धनी तम्बाकू या अफीम बेचनेवाला बे-रोक टोक मजे से समाज में रहता है और अपने व्यवसाय के द्वारा फूलता-फलता है, पर केवल धनाढ्य होने के कारण ही कोई उसे घृणा या उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखता। सहस्रों निर्धन निरपराध लोग उन अपराधों के लिये दोषी ठहराये जाकर, जिनको कि उन्होंने कभी भी नहीं किया, दण्डित किये जाते हैं, परन्तु एक धनाढ्य अपराधी साफ अपराध प्रमाणित हो जाने पर भी रिश्वत, बात या सिफारिश रूपी शस्त्र रखने के कारण सर्वथा बच जाता है। यद्यपि कवि तत्त्ववेत्ता पुकार-पुकार कर कह रहे हैं कि सब मनुष्य बन्धु हैं, यद्यपि विशुद्ध धर्म अपने निर्बल धीमे स्वर से यह उपदेश कर रहा है कि हम एक उच्च पिता की सन्तान हैं फिर भी धनी लोग निर्बलों और निर्धनों पर अपने लगातार अत्याचार उत्पात, अन्याय और दौरात्म्य से ऊँच-नीच पैदा कर रहे हैं। धन के इस समारोह के कारण एक उपाधिधारी विद्यार्थी भी अपनी रुचियों को, प्रवृत्तियों को-यदि कोई उसकी है-छोड़ देता है और अपने अभिलषित व्यवसाय के लिये अपनी

वास्तविक अयोग्यता को भली-भाँति जानता हुआ भी डॉक्टरों इञ्जीनियरों, वकालत और नौकरी पर पिल पड़ता है और अपने दुष्ट व्यवसाय के परिणामों से संसार में तूफान मचा देता है। पत्र-सम्पादक जो अपने आपको लोकमत का नेता कहते हुए कभी लज्जित नहीं होता, नि:संकोच होकर अपनी आत्मा को बेच डालता है और अपने सहायक दल का गुण गाता है। समाचार-पत्रों के हीन गुण साहित्य, क्योंकि समाचार-पत्रों का साहित्य बहुत कम सुधारने वाला, पुनर्जीवित करने वाला या उच्च करने वाला होता है-को पढ़िये, आप देखेंगे कि उनका कितना थोड़ा भाग निर्दोष उपदेश, सच्चे नेतृत्व या न्याय और सत्य के अर्पण होता है और कितना अधिक ईर्ष्या, भावभूयिष्ठता , जातीय और स्वार्थपर पक्षपात और जानबूझकर मिथ्या वर्णन से भरा रहता है। उनकी सारी पुण्यशीलता और निरपेक्षता केवल दिखलावे और व्यवहार के लिए होती है और वास्तव में यह नीच स्वार्थपरता और झगड़ालू साम्प्रदायिकता के बदले में खरीदी जाती है। क्या यह मनुष्यत्व है?

ऊपर के विचारों से यह परिणाम अपने आप निकलता है कि धन की प्राप्ति उन्माद की तरह का एक रोग है। जब तक इस विश्वव्यापी रोग का, जिसने कि इस समय समाज को घेर रखा है और सदाचार और धार्मिक भावों की जड़ को काट रहा है, आधुनिक रोगनिदान-शास्त्र में उल्लेख न होगा यह शास्त्र अधूरा ही रह जायेगा।

इस रोग का नाम 'धन का डाह' रखना चाहिए, क्योंकि उन्माद के अन्य रूपों की तरह इसमें भी मानसिक समता नष्ट हो जाती है और विचार असंगत हो जाते हैं। इससे एक ही दिशा में अपरिवर्तनीय पक्षपात उत्पन्न हो जाता है। जो मानव प्रकृति को चेष्टा और उमंग के अन्य सब मार्गों से हटा लेता है और अन्ततः यह सारी शारीरिक रचना की ऐसी अत्युत्तेजित दशा बना देता है जो कि संयम या व्यापारों के स्वाभाविक अभ्यास से असंगत होती है। हैजा (विषूचिका) या इसी प्रकार के अन्य छूत के रोगों की तरह यह अपने सहायकारी बीज बहुलता से और दूर तक फैलाता है। इन चीजों को ग्रहणशील मानव-शरीर सुगमता से ग्रहण कर लेता है और संक्रामक रोगों की तरह यह भी पिता से पुत्र में, भाई से भाई में, और साथी से मित्र में सुगमता से संक्रमित हो जाता है। इसलिए-

'धन का डाह' उन्माद के सदृश एक रोग है जो बहुत शीघ्रता से उड़कर लगता है, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में चला जाता है, असाध्य या दु:साध्य है, और अतीव उग्र है।

इस विचार से कि हमारे गुणग्राही पाठकों को रोग-निदान में किसी प्रकार का कष्ट न हो, हम नीचे इस रोग के मोटे-मोटे चिह्न देते हैं। इसके लक्षण ये हैं-तर्पणातीत पिपासा या यशस्तृष्णा, सदा भूखा आमाशय एक कफमय (उदासीनता से भरा हुआ) और कर्कश (चिड़चिड़ा) स्वभाव, पहले दर्जे की इन्द्रिय सूक्ष्मता और शीघ्रोपित्व, पाशविक और मानुषी विकारों का प्रबल अन्तर्दाह, अशान्ति, निद्रा का अभाव और चिन्ता, गर्व, शक्ति और ज्वर की सी अवस्था के आक्रमण, नैतिक और आध्यात्मिक कार्यशक्तियों का पक्षाघात, इन्द्रियातीत या अलौकिक अनुभवों के प्रति जड़ता, अधिक खाने, अधिक पहनने, आलस्य, विलासिता और सुख के लिए सीमातीत लालसा, बाह्य स्वाधीनता का बनावटी रूप, व्यक्तिगत निर्बलता और क्षीणता।

अब हम अपने उत्सुक पाठकों से सच्चाई, न्याय और साधुता के नाम पर पूछते हैं कि क्या, जो रोग मनुष्य को पागल बना देता है, जो रोग कि वेदान्त की हँसी उड़ाता, चिन्ताशील ध्यान या तत्त्वज्ञान को घृणा की दृष्टि से देखता और ब्रह्मविद्या को अव्यवहार्य, असाध्य और अयुक्त समझकर उसका परित्याग कराता है, जो रोग मनुष्य जाति के नैतिक, युक्तिसंगत और आध्यात्मिक रीति से उन्नत और उच्च करने के सभी यत्नों को कल्पनात्मक बताकर कलंकित कराता है, जो रोग आत्मज्ञान को असंभव कहता है, जो रोग सदाचार को गिराकर औचित्य की सतह पर ले आता है, जो रोग विश्वपति की पूजा के स्थान में मूर्तिपूजा के एक अतिदीन और अतिनिकृष्ट रूप में तांबे, चाँदी और सोने की पूजा सिखाता है, जो रोग यह बतलाता है कि मनुष्य में खाने-पीने और रुपया कमाने के सिवाय और कोई प्रकृति नहीं, एक बार हम फिर पूछते हैं कि क्या ऐसे रोग को स्वयं जड़ से उखाड़कर न फेंक देना चाहिए और इसको इस प्रकर न जला देना चाहिए कि यह फिर न उत्पन्न हो? क्योंकि जब तक यह रोग विद्यमान है, सदाचार, धर्म, सच्चाई और तत्त्वज्ञान, कोई भी नहीं रह सकता।

धार्मिक विचारों के प्रवाह का नियम निर्दोष मन, निरपेक्ष, सत्यपूर्ण प्रकृति, शान्त और अक्षुब्ध भाव, बलवान् उद्यमी बुद्धि और समाहत ध्यान है, पर दौलत के लिए अन्धाधुन्ध दौड़-धूप इन्हीं सद्गुणों की जड़ को खोखला

कर डालती है। चिन्ता और अभिमान, जो रुपया पास होने के कारण अवश्य उत्पन्न हो जाते हैं, मन की शान्ति को नष्ट कर डालते हैं। जटिल सम्बन्ध में अनुराग, जो शक्ति पास होने से (रुपया शक्ति है) सदा उत्पन्न हो जाते हैं, थोड़ी बहुत रही-सही निरपेक्षिता और सत्यवादिता को भी दूर कर देते हैं। यहाँ तक कि चिन्ता के कारण, अशान्त गर्व के कारण, कलहकारी और स्वार्थ के कारण पक्षपाती होकर मनुष्य एकाग्रता और निर्मल विचार दोनों की शक्ति को खो बैठता है।

अहो! स्वाधीनता, सच्ची और प्रकृत स्वाधीनता-जिसमें मनुष्य अपनी परिस्थितियों और अवस्थाओं का दास नहीं रहता, प्रत्युत उनका स्वामी बन जाता है-कैसी उन्नति और सम्मान को देने वाली है और फिर भी मनुष्य में इस आनन्दमय अवस्था की वृद्धि और भाव को और कोई वस्तु इतना आघात नहीं पहुँचाती जितना कि धन का पास होना। जो मनुष्य अपने धन का घमण्ड करता है वह अवश्य ही अपने धन का दास है। हृष्ट-पुष्ट और तन्दुरुस्त मनुष्य सदा अपनी तन्दुरुस्ती का आनन्द लेता है। वह अपनी प्रकृति-शक्ति से अनभिज्ञ नहीं और उस शक्ति के प्रयोग में जिस स्वतन्त्रता का अनुभव वह करता है, उस पर उसे यथार्थ अभिमान है। ऐसे मनुष्य को जब कभी कहीं जाने की कामना होती है तो वह अपने जंगम उपकरण (टांगों) को काम में लाता है, जब वह अपने बल और वीर्य को तरोताजा करना चाहता है तो वह शारीरिक व्यायाम करता है, जब कभी उसे विश्राम की आवश्यकता होती है तो वह आकाश के शुद्ध वायु का सेवन करने या प्रकृति के दृश्यों का आनन्द लूटने के लिए बाहर चला जाता है, जब कभी उसे एक सच्चे मनुष्य की तरह अपनी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करने की अभिलाषा होती है तो वह ध्यानावस्थित होकर उच्च विचारों को बढ़ाता है, जब कोई रोग या गर्मी और सर्दी की अधिकता उसको सताती है तो वह अपनी स्वयं चिकित्सक प्रकृति की निन्द्रित और स्थितपालक शक्तियों को जगाता है। सारांश यह है कि जिन पदार्थों की उसको आवश्यकता पड़ती है वे प्रकृति ने स्वयं ही उसे पर्याप्त परिमाण में दे रखे हैं। पर धनाढ्य का सारा दारोमदार द्रव्य की भड़कीली चीज पर ही है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचने के लिए उसे गाड़ी का प्रयोजन है, वह पैदल नहीं चल सकता। स्वाभाविक स्वास्थ्य की चमक-दमक के स्थान पर उसमें औषधियों के प्रभाव से या चिकित्सक वैद्यों की सहायता से तोंद निकली होती है, तन्दुरुस्त आमाशय और सादा भोजन होने के स्थान पर उसका भोजन देर से पचने वाला, उसका आमाशय निर्बल होता है, जिसे उसे पचाने के लिए ऊपर से तेज मदिरा पीने की आवश्यकता होती है, बाहर निकलकर प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लूटने के स्थान वह अपने कमरे की दीवारों पर निर्जीव निःशब्द चित्र लटकाता है। वह स्वाभाविक तितिक्षा के स्थान में पंखों की शीतल करने वाली शक्ति, आग का गरम करने वाला विशेष गुण, शरबतों की तरोताजा करने वाली शक्ति और मदिरा के उत्तेजित प्रभाव के पूर्णतः आश्रित रहता है। क्या यही स्वाधीनता है जिसका अनुभव मनुष्य को करना चाहिए।

इस प्रवृत्ति के परिणाम केवल इसी सीमा तक नहीं बढ़े हैं। आधुनिक सभ्यता धन के गिरगिट की भाँति रंग बदलने वाले गुण के कारण पैदा हुआ एक दृश्य चमत्कार इस प्रवृत्ति के विश्रुत कार्यों से भरी पड़ी है। प्राचीन संसार ने बर्बर और असभ्य पैदा किए थे, क्योंकि वे वर्षा और वायु से अस्थायी रक्षा के लिए बनाई हुई केवल कुटियों या गुफाओं में प्रायः नंगे रहने वाले मनुष्य प्रकृति के बलवान् नमूने थे, क्योंकि उनकी आवश्यकता थोड़ी होने के कारण उनकी कलाएँ सादी और गिनती की थीं, क्योंकि प्रबल स्मरणशक्ति रहने के कारण उनका ज्ञान वही था जिसे वह कण्ठस्थ कर लेते थे और प्रमाण देने के लिए उनकी पुस्तकें या पुस्तकालय उनकी स्मृति की तख्ती का अभ्रान्त लेख था, क्योंकि निर्मल मस्तिष्क रखने के कारण दृष्टान्त ऐसे साधारण और प्रसिद्ध होते थे कि उनकी युक्ति उथली प्रतीत होती है, क्योंकि बुद्धि के तीक्ष्ण होने के कारण वे उपमिति से युक्ति देते थे, इसलिए अवलोकन ही उनका ज्ञान था। सारांश, संसार जैसे मनुष्य आजकल उत्पन्न करता है, वे उनसे सर्वथा भिन्न थे। आधुनिक संसार ऐसे सभ्य मनुष्य पैदा करता है जो ''मनुष्य प्रकृति के दुर्बल नमूने हैं।'' उनकी वास्तुविद्या विशाल और अधिक स्थायी है। इनकी कलाएँ जटिल और बहुसंख्यक हैं। इनकी स्मरण शक्तियाँ निर्बल, दूषित और अधिक अविश्वसनीय हैं। इनके पुस्तकालय इतने भारी हैं कि एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान में ले जाए नहीं जा सकते। इनके उदाहरण भारी और अपूर्ण हैं, क्योंकि उनको बपतिस्मा की

रीति पर अस्पष्ट, संस्कृत और पारिभाषिक भाषासरणि से वैज्ञानिक रंग में प्रकट किया जाता है। इनका तर्क आनुमानिक है, इनकी परीक्षा प्रयोग है, इनकी युक्ति सम्भाव्यताओं की कल्पना है। यह है नैतिक और मानसिक सभ्यता पर धन का बहुविस्तीर्ण प्रभाव।

यदि धनाढ्य होने में इतनी दुष्ट प्रवृत्तियाँ और संदेहजनक परिणाम भरे पड़े हैं, तो इससे यह कल्पना न कर लेनी चाहिए कि जो प्रायः इसका उलट अर्थात् दरिद्रता कहलाती है, उसमें इनसे कुछ कम हैं। क्योंकि संस्कृत में कहा है- **बुभुक्षितः किं न करोति पापम्।**

''ऐसा कौन सा पाप है जो दरिद्रता न करती हो।'' दरिद्रता से हमारा अभिप्राय उस कठिन भारी धातु के अभाव से नहीं जो दूसरे तौर पर सोना कहलाती है, (क्योंकि ताँबा, सोना, चाँदी ऐसे निर्जीव पदार्थों का सजीव आत्मा की शारीरिक, मानसिक और नैतिक समृद्धि पर क्या परिणाम हो सकता है) प्रत्युत हमारा अभिप्राय मन की दरिद्रता से है। क्योंकि जहाँ केवल धातु के अभाव की ही शिकायत हो वहाँ उसकी पूर्ति शारीरिक परिश्रम और मस्तिष्क चिन्ता की चिन्ताशीलयुक्ति से भलीभाँति की जाती है, परन्तु मन के आध्यात्मिक और सञ्चय में जो कि सारे उद्योग, बुद्धि प्रभाव, भद्रता और उपभोग, सबका एक सा आधार है, प्रकृत द्रव्य की कमी कैसे पूरी हो सकती? संसार की भूल इस बात में है कि उसने सांसारिक गुह्य स्थूल वस्तुओं को किसी काम का ख्याल कर लिया है, और ऐसे द्रव्यों के बाहुल्य को सम्पत्ति का चिह्न समझ लिया है। सच्ची सम्पत्ति, आत्मा का धन और मन का चतुर्विध सहज गुणों से भरा होना है। वे सहज गुण ये हैं- स्वास्थ्य, इच्छा और शारीरिक बल का गुण, मानसिक शक्तियों का गुण, नैतिक और भावप्रधान सञ्चय का गुण। जिस व्यक्ति को इन मानसिक गुणों में से उचित भाग मिला है उसे चाहिए कि धातु के छोटे दो कठिन और गुरु चमकते हुए टुकड़ों को जो सिक्के के नाम से प्रसिद्ध हैं, तुच्छ समझकर त्याग दे। क्योंकि मन की इन स्वाभाविक शक्तियों से काम लेने के अतिरिक्त और कोई स्वाधीनता, सच्ची स्वतन्त्रता और माहात्म्य नहीं। बुद्धि ही सर्वोपरि नियम है। मदोत्कट सिंह, महाकाय हस्ती, उग्र शार्दुल, भोंकने वाला भेड़िया, रक्त पिपासु शिकारी कुत्ता-मनुष्य की निग्रहकारिणी श्रेष्ठ बुद्धि के द्वारा धमकाये जाते हैं, वन के उच्छृङ्खल पशु पालतू बनाये जाते हैं, खानों से कठिन चट्टानें पृथक् की जाती हैं, पृथिवी के पेट से बन्द खजाने निकलवाये जाते हैं, प्रबल नदियों के मार्ग बदल दिये जाते हैं, जल प्रपातों की तीव्र शक्ति छीनकर घूमने वाली कलों को दी जाती है, आग और पानी से प्रतिक्षण ४० या ५० मील प्रति घण्टा के घोर वेग से लाखों मन बोझ खिंचवाया जाता है, आकाशस्थ बिजली को नोकदार वज्रशूलों के द्वारा कैद कर लिया जाता है, ये सब काम श्रेष्ठ बुद्धि के पथ प्रदर्शन और उपदेश के प्रताप से ही किये जाते हैं। केवल भौतिक ब्रह्माण्ड या पशु जगत् ही इस प्रकार बुद्धि की शक्ति द्वारा पराजित नहीं हुआ, स्वच्छन्द राजत्व धनवानों के प्रबल राज्य, जन्म के अभिमान, और वंश के गर्भ को भी तर्क के प्रजातन्त्र, ''मन के राजतन्त्र'' या ''बुद्धि के लोकसत्तात्मक'' शासन ने नीचा दिखलाया और अधीन किया है। और इससे बढ़कर जिन विद्यार्थियों के बाल वृद्धावस्था के कारण श्वेत हो चुके हैं, उन्होंने भी अपने आप ग्रहण किए हुए महत्त्व को छोड़कर श्रेष्ठतर बुद्धि वाले लोगों (चाहे वे तरुण ही क्यों न हों) के चरणों में बैठकर शिक्षा प्राप्त की है। यहाँ तक कि उद्यमशील निपुण और चतुर मनुष्यों ने भी नवीन विचारों की सर्वशक्तिमत्ता के सामने सिर झुकाया है।

अतएव यह बात चित्तपट पर भलीभाँति अंकित होनी चाहिए कि बुद्धिरूपी धन ही सच्चा धन है। यह अक्षय धन है। इसकी जितनी पूजा और सम्मान किया जाये, थोड़ा है। भौतिक और जड़ धन को हमें सबसे निकृष्ट समझना चाहिए। मनु भगवान् कहते हैं-

वित्तं बन्धुवर्यः कर्म विद्या भवति पंचमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्।।

''सम्पत्ति, जन्म का माहात्म्य, आयु, व्यवसाय, सम्बन्धी, कौशल या निष्कपट उद्यम और ज्ञान (बुद्धि विभव) वे पाँच चीजें सम्मान के योग्य हैं और इनमें पहली से पीछे वाली आदरणीय है।'' परिणाम यह निकलता है कि मानसिक ऐश्वर्य सबसे अच्छा धन है और कि इसकी तलाश (जो कि धन की तलाश से सर्वथा विपरीत है) ही मनुष्य-प्रकृति की श्रेष्ठता के समुचित है। मन ही शक्ति का सच्चा उद्गम स्थान है और विचार (या ज्ञान) ही सच्ची सम्पत्ति है, जिसके सामने शेष सब कुछ मिट्टी में मिलकर नष्ट हो जाता है। उपनिषद् कहती है-

आत्मना विन्दते वीर्यं विद्यया विन्दतेऽमृत्तम्।

सच्ची शक्ति आत्मा से आती है और अमरत्व विचारों (बुद्धि) से प्राप्त होता है।

1. President white's address. Appendix to Lectures on "Light". by G. Thyndal Third edition 1892, pp. 238-239.

वैदिक पुस्तकालय अजमेर
द्वारा प्रकाशित नये संस्करण

१. वेदपथ के पथिक (आचार्य धर्मवीर स्मृति ग्रन्थ)

पृष्ठ संख्या-२६४

मूल्य-रु. २००/-(आधे मूल्य पर उपलब्ध)

परोपकारिणी सभा के यशस्वी प्रधान डॉ. धर्मवीर जी का जीवन सत्य के लिये संघर्षपूर्ण रहा है। विषम परिस्थितियों में भी उन्होंने ईश्वर, वेद और धर्म को अपने जीवन से तनिक भी अलग नहीं होने दिया और यही विशेषता रही, जिसके कारण वे एक आदर्श आचार्य, आदर्श नेता, आदर्श लेखक, आदर्श सम्पादक एवं आदर्श उपदेशक के रूप में प्रतिष्ठित हुए। उनके जीवन की कही-अनकही घटनाएँ हमें भी प्रेरणा दें, इस दृष्टि से ये ग्रन्थ अवश्य पठनीय है। जिन्होंने डॉ. धर्मवीर जी को निकट से देखा है, जो उनके जीवन की घटनाओं के साक्षी रहे हैं, उनके संस्मरण इस कर्मयोगी के जीवन की बारीकियों को उजागर करते हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में चित्रों के माध्यम से भी उनके जीवन की कुछ झलकियों को दर्शाया गया है।

२. महर्षि दयानन्द सरस्वती के कुछ हस्तलिखित पत्र-

पृष्ठ संख्या-३३६ मूल्य-रु. २००/-

महर्षि दयानन्द, उनके उद्देश्यों, कार्यों, योजनाओं एवं व्यक्तित्व को समझने में उनके द्वारा लिखे पत्र उतने ही उपयोगी हैं, जितना कि उनका जीवन-चरित्र। ये पत्र महर्षि के हस्तलिखित हैं। पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें मूल-पत्रों की प्रतिलिपि दी गई है और साथ ही वह पत्र टाइप करके भी दिया गया है। यह पुस्तक विद्वानों के दीर्घकालीन पुरुषार्थ का फल है। जनसामान्य इससे लाभ ले-यही आशा है।

३. अंग्रेज जीत रहा है-

लेखक - प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या-२२२ मूल्य-रु. १५०/-

इस पुस्तक में डॉ. धर्मवीर जी के 'भाषा और शिक्षा' विषय पर लिखे गये ४२ सम्पादकीयों का संकलन किया गया है। 'परोपकारी' पत्रिका में लिखे गये इन सम्पादकीयों को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने की माँग समय-समय पर उठती रही है। अतः पुस्तक पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। डॉ. धर्मवीर जी का चिन्तन बेजोड़ था। वे जिस विषय पर जो भी लिखते वह अद्वितीय हो जाता था। उनके अन्य सम्पादकीयों का प्रकाशन भी प्रक्रिया में है। पुस्तक का आवरण व साज-सज्जा अत्याकर्षक है।

४. स्तुता मया वरदा वेदमाता-

लेखक - प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या-१३५ मूल्य-रु. १००/-

वेद ईश्वर प्रदत्त आचार संहिता है। वेद की आज्ञा ईश्वर की आज्ञा है और वही धर्म है, इसलिये मानव मात्र की समस्त समस्याओं का समाधान वेद में होना ही चाहिये। वेद के कुछ ऐसे ही सूक्तों की सरल सुबोध व्याख्या ही इस पुस्तक में की गई है। पुस्तक की भाषा इतनी सरल है कि नये-से नये पाठक को भी सहज ही आकर्षित कर लेती है। व्याख्याता लेखक आचार्य डॉ. धर्मवीर जी के गहन आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक चिन्तन व अनुभवों के परिणामरूप यह पुस्तक है।

५. इतिहास बोल पड़ा-

लेखक - प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु

पृष्ठ संख्या-१५९ **मूल्य**-रु. १००/-

इस पुस्तक में इतिहास की परतों से कुछ दुर्लभ तथ्य निकालकर दिये गये हैं, जो कि आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती के गौरव का बखान करते हैं। पुस्तक के लेखक प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु हैं। ऋषि के समय में देश-विदेश से छपने वाले पत्र-पत्रिकाओं के उद्धरण इस पुस्तक में दिये गये हैं।

६. बेताल फिर डाल पर

लेखक - प्रो. धर्मवीर

पृष्ठ संख्या-१०४ **मूल्य**-रु. ६०/-

डॉ. धर्मवीर जी की हॉलैण्ड एवं अमेरिका यात्रा का विवरण एवं अनुभव इस पुस्तक में है। विदेश में आर्यसमाज की स्थिति, कार्यशैली, वहाँ की परिस्थितियाँ एवं विशेषताओं को यह पुस्तक उजागर करती है। यायावर प्रवृत्ति के विद्वान् आचार्य धर्मवीर जी की यह पुस्तक एक प्रचारक के जीवन पर भी प्रकाश डालती है।

७. लोकोत्तर धर्मवीर-

लेखक - तपेन्द्र वेदालंकार,

पृष्ठ संख्या-४४ **मूल्य**-रु. २०/-

तपेन्द्र वेदालंकार (सेवानिवृत्त आई.ए.एस.) ने इस पुस्तक में डॉ. धर्मवीर जी के जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं पर प्रकाश डाला है, जिनसे धर्मवीर जी के महान् लक्ष्यों व तदनुरूप कार्यशैली का पता चलता है। इस लघु पुस्तक से प्रेरणा लेकर प्रत्येक आर्य ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के उद्देश्यों को पूर्ण करने में उत्साहित हो-यही आशा है।

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाता धारक का नाम - **वैदिक पुस्तकालय, अजमेर।**

बैंक का नाम - **पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या - **0008000100067176**

IFSC - PUNB0000800

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अतिथि-यज्ञ के होताओं से उनकी वैवाहिक वर्षगाँठ अथवा जन्मदिन व विभिन्न अवसरों पर ५१०० रु. प्रतिवर्ष सभा को प्राप्त होते रहते हैं। जो महानुभाव संकल्प के साथ इस पुनीत कार्य से जुड़े हुए हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि वे अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है। आप अपनी राशि सभा के बैंक खाते में नकद अथवा चैक द्वारा जमा करा सकते हैं।

महात्मा हंसराज

डॉ. सुरेन्द्र कुमार

महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं, ''जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुषार्थरहितता, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है, इससे देश में विद्या, सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन सब बढ़ जाते हैं। जैसे कि मद्य-मांस सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचार आदि दोष बढ़ जाते हैं। और जब युद्ध-विद्या कौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करने वाला भूगोल में दूसरा न हो, तब उन लोगों में पक्षपात, अभिमान बढ़कर अन्याय बढ़ता है।''

भूमण्डल के भूषण भारत देश के साथ भी ऐसा ही कुछ हुआ। सुख सौभाग्य, धन-धान्य एवं सब प्रकार से सम्पन्न आर्यावर्त के विषय में महर्षि लिखते हैं-''ऐसे शिरोमणि देश को महाभारत के युद्ध ने ऐसा धक्का दिया कि अब तक भी यह अपनी पूर्वदशा में नहीं आया..... जब बड़े-बड़े विद्वान्, राजा, महाराजा, ऋषि, महर्षि लोग महाभारत युद्ध में बहुत से मारे गए और बहुत से मर गए, तब विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार नष्ट हो चला। ईर्ष्या, द्वेष, अभिमान आपस में करने लगे। जो बलवान् हुआ वह देश को दाबकर राजा बन बैठा, वैसे ही सर्वत्र आर्यावर्त देश में खण्ड-बण्ड राज्य हो गया।''

एक अन्यत्र स्थान पर महर्षि ने अपनी अन्तर्वेदना को व्यक्त करते हुए लिखा है-''क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पाँच हजार वर्ष पहले हुई थीं उनको भूल गए? देखो महाभारत युद्ध में...आपस की फूट से कौरव, पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया...परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जाने यह भयंकर राक्षस कब छूटेगा या आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःखसागर में डुबा मारेगा। उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे, स्वदेश विनाशक नीच के दुष्ट मार्ग में, आर्य लोग अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर कृपा करे कि यह राजरोग हम आर्यों में से नष्ट हो जाए।''

घोर अज्ञानता में घिरा हमारा देश जाति-पांति, मत-पन्थ, सम्प्रदायों के नामों में बँटा एक-दूसरे का वैरी हो रहा था। एक-दो नहीं तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं की कल्पना के बाद हर नदी-नाला, कंकर-पत्थर, पशु-पक्षी, यहाँ तक की पागलपन और ज्वरादि रोगों की भी पूजा अर्चना शुरु हो गई थी। रुढ़िवाद से संश्लिष्ट सामाजिक कुरीतियाँ हमें घुन की तरह खोखला किए जा रहीं थीं। योरोपियन पादरियों ने तो शीघ्र ही सारे भारत के ईसाई हो जाने की भविष्यवाणी भी कर दी थी।

महर्षि की रहनुमाई में आर्यसमाज इन सारी कुरीतियों से जूझ रहा था कि अजमेर से आए हृदयविदारक समाचार ने पूरे आर्यजगत् को स्तब्ध कर दिया। समाचार था-कि महर्षि दयानन्द को जोधपुर में किसी ने भयंकर विष दे दिया, जिससे ३० अक्टूबर १८८३ को दीपावली के दिन ''प्रभु तेरी इच्छा पूर्ण हो, तूने अच्छी लीला की'' कहकर उन्होंने निर्वाण को प्राप्त कर लिया।

पंडित गुरुदत्त जी और लाला जीवन दास जी उस समय अजमेर में ही थे। लाहौर लौटने पर महर्षि की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए उनकी प्रतिष्ठा के अनुरूप एक शिक्षा संस्थान की स्थापना पर विचार होने लगा। ८ नवम्बर १८८३ को लाहौर में ऋषि भक्तों ने सभा की और दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज और स्कूल खोलने का निश्चय किया, जहाँ पाश्चात्य ज्ञान के साथ भारतीय संस्कृति और विशेषकर वेदों की शिक्षा दी जाए।

बी.ए. पास हंसराज जी के मन में स्वतन्त्रता प्रिय होने के कारण सरकारी नौकरी का लोभ तो नहीं था, पुनरपि किसी रियासत का प्रधानमन्त्री वे अवश्य बनना चाहते थे। जब उन्हें यह पता चला कि धनाभाव के कारण दयानन्द स्कूल और कॉलेज का उद्देश्य पूरा नहीं हो रहा तो प्रधानमन्त्री पद की लालसा पर एक महान् त्याग का भाव छाने लगा। मन में बार-बार उठने वाले इस विचार ने कि जिस ऋषि ने लोककल्याण के लिए स्वयं को तिल-तिल कर आहूत कर दिया, उसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए मैं कुछ नहीं कर सकता? इसी अकुलाहट में एक दिन वह अपने बड़े भाई मुलखराज जी के पास पहुँचे और कहने लगे, ''यह बहुत ही दुःख और खेद की बात है कि दयानन्द कॉलेज जैसा कल्याणकारी काम धनाभाव के कारण शिथिल पड़ रहा है। मैं अपना जीवन इस काम को पूर्ण करने के लिए अर्पण करना चाहता हूँ। मेरी

इच्छा है कि एक पैसा लिए बिना अपना जीवन कॉलेज को दान कर दूँ, परन्तु यह काम आपकी सहायता के बिना हो नहीं सकता।"

बड़े भाई की तो जैसे मन की मुराद पूरी हो गई। अनुज की मनोकामना पर पुलकित होते हुए अपने मिलने वाले अस्सी रुपये के मासिक वेतन में से चालीस रुपये हंसराज जी के परिवार के लिए देने निश्चित कर दिए। इस भ्रातृयुगल का यह त्याग आज के स्वार्थी संसार के लिए प्रेरक उदाहरण है।

इस विषय की सूचना जब निराश होते हुए आर्यसमाज के कार्यकर्त्ताओं को मिली तो ऐसा लगा जैसे हंसराज जी के जीवनदान के साथ कार्यकर्त्ताओं को भी नवजीवन मिल गया।

१ जून १८८६ आर्यसमाज लाहौर के भवन में स्कूल आरम्भ हुआ और हंसराज जी को इसका अवैतनिक मुख्याध्यापक नियुक्त कर दिया गया।

महात्मा हंसराज जी की माता जी गौभक्त थीं, गो सेवा करते हुए ही १९ अप्रैल १८६४ को हंसराज जी के जन्म के समय एक बूढ़ी माँ ने कहा था "भाग्यवान्! गौ माता की सेवा करते हुए तुझे यह बालक मिला है। बड़ा सुलच्छना है। जैसे गाय सूखा घास खाकर अमृत जैसा दूध देती है वैसे ही यह बालक भी गाय की तरह परोपकारी, जाति का रक्षक और निष्काम सेवा करने वाला होगा।" प्राय: ऐसी बातें हर किसी के जन्म पर कह दी जाती हैं, किन्तु कौन जानता था कि बूढ़ी माँ के द्वारा की गई यह भविष्यवाणी सर्वथा सत्य सिद्ध होगी।

हंसराज जी का बचपन अत्यन्त अभावों में बीता था। स्कूल के दिनों में अनेक बार पाँव में जूता भी नहीं होता था। ग्रीष्मकाल में जब तपते रेत की तपिश असह्य होती तो लकड़ी की तख्ती पावों के नीचे रख लेते, जलन कम होने पर पुन: आगे बढ़ते।

हिन्दू और हिन्दुस्तान का अपमान उन्हें इतनी पीड़ा पहुँचाता था कि एक बार ईसाई मुख्याध्यापक मि. आर.सी.दास द्वारा वैदिक धर्म और हिन्दू सभ्यता पर अनुचित और भद्दी टिप्पणी करने पर कक्षा में ही उनका प्रतिवाद करते हुए उन्हें गलत सिद्ध किया और अपनी पुष्टि में अनेक उदाहरण दे डाले, जिसके कारण उन्हें बैंतों की मार के दण्ड के साथ स्कूल से भी निकाल दिया गया।

यदि हंसराज जी चाहते तो बी.ए. पास करने के बाद कहीं भी कमिश्नरी प्राप्त करके दौलत में खेल सकते थे, क्योंकि उस समय बी.ए. पास कर लेना आई.ए.एस. के समकक्ष था, किन्तु सूर्य का प्रकाश किसी एक क्षेत्र या वर्ग के लिए नहीं होता। सबकी उन्नति में अपनी उन्नति का भाव रखने वाले को अवसर की तलाश नहीं होती, अवसर उन्हें खोज लेता है। लाहौर के मिशन स्कूल में जब आपने प्रवेश लिया तो आर्यसमाज लाहौर के मन्त्री श्री लाला साईंदास जी से आपकी भेंट हुई और जौहरी ने सच्चे हीरे को पहचानकर उसको उसकी उचित जगह पर जड़ दिया (आर्यसमाज का सदस्य बना दिया)। इसके बाद तो जैसे इन्हें ऋषिकृत वेदभाष्य एवं अन्य ऋषि ग्रन्थों के स्वाध्याय का जुनून सिर चढ़ गया और ऋषि निर्दिष्ट सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिए व्याख्यान देना, सैद्धान्तिक संवाद करना, पत्र-पत्रिकाओं का बिना किसी पारिश्रमिक के सम्पादन करना ही दिनचर्या का अंग बन गया।

आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द के इस अद्भुत दीवाने के बहुआयामी व्यक्तित्व में समाजहित के सामने व्यक्तिगत हित सर्वत्र गौंण दिखाई पड़ता है। पुत्र को मृत्युदण्ड का फैसला सुनने के बाद जालन्धर आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में आध्यात्मिक उन्नति पर मार्मिक उपदेश (पूर्वघटित घटना की किसी से चर्चा किए बिना) देना किसी योगी का ही कार्य हो सकता है।

भारत के किसी भी क्षेत्र में अकाल पड़ा हो अथवा भूकम्प की विनाशलीला हो, विधर्मियों का मजबूर भारतीयों पर जाल फैला हो या महामारी का ताण्डव हो रहा हो, सब जगह महात्मा हंसराज जी स्वयं या डी.ए.वी. कॉलेज के विद्यार्थी स्वयंसेवक बनकर घायलों की मरहमपट्टी, बेघरों के लिए झोंपड़े और दिवंगत लोगों की अंतिम क्रिया करने में सबसे आगे दिखाई देते थे।

यद्यपि प्रादेशिक एवं प्रतिनिधि सभाओं के मध्य कटुता उत्पन्न हो गई थी, पुनरपि महात्मा जी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के प्रति अत्यन्त आदर भाव रखते थे। बालविवाह एवं छूतछात के विरोध के साथ ब्रह्मचर्य, विधवा-विवाह तथा शुद्धि को आन्दोलन का रूप देकर जो जागृति उत्पन्न की, उसके लिए शताब्दियों तक समाज आपका ऋणी रहेगा।

शङ्का समाधान - २३

डॉ. वेदपाल, मेरठ

शङ्का- १. ईश्वर और भगवान् क्या समानार्थी हैं?

२. चौपाई रामचरितमानस-कथन-काकभुशुण्ड जी-

इहां बसत मोहि सुनु खग ईसा।
बीते कल्प सात अरु बीसा।।

वर्तमान में एक कल्प में कितने दिन होते हैं, सत्ताईस कल्पों के कुल कितने दिन हुए?

-सत्येन्द्र कुमार आर्य, सण्डी बंगला (रायपुर)

समाधान-१. ईश्वर शब्द विशेषण है। '**ईश ऐश्वर्ये**' (अदादि.) धातु से '**स्थेशभासपिसकसो वरच्**' (अष्टा. ३.२.१७५) से वरच् प्रत्यय होने पर 'ईश्वर' शब्द सिद्ध होता है। इसका अर्थ है ऐश्वर्ययुक्त होना। आप्टे के अनुसार-'ईश्वर' शब्द के शक्तिसम्पन्न, योग्य, समर्थ, धनाढ्य, दौलतमन्द, मालिक, स्वामी आदि अर्थ हैं-(द्र. आप्टे, संस्कृत-हिन्दी कोश, पृ. १८०)। उणादिकोष ५.५७-'**अश्नोतेराशुकर्मणि वरट् च**' के अनुसार '**अश्नुते आशु शीघ्र करोति जगद् रचयति स ईश्वरः स्वामी वा**' जो शीघ्रता से जगद् रचन करता है अथवा उसमें व्याप्त हो रहा है, वह ईश्वर है। किसी वस्तु वा पदार्थ का स्वामी भी ईश्वर कहलाता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थप्रकाश समुल्लास प्रथम में ईश्वर के नामों की व्याख्या करते हुए-

''य ईष्टे सर्वैश्वर्यवान् वर्तते स ईश्वरः''

जिसका सत्य विचारशील ज्ञान और अनन्त ऐश्वर्य है, इससे उस परमात्मा का नाम ईश्वर है (पृष्ठ-१५)। संसार में अनेक व्यक्तियों के पास ऐश्वर्य होना सम्भव है, किन्तु **ऐश्वर्य का अतिशय तो 'हिरण्यगर्भः' यजु. १३.४, 'रत्नधातमम्' ऋ. १.१.१ आदि विशेषण विशेषित जगत्स्रष्टा में ही सम्भव है।**

योगदर्शन १.२ में भी-

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः

अविद्यादि क्लेश, कर्म तथा उन कर्मों की शुभ-अशुभ वासना से रहित पुरुष विशेष ही ईश्वर पद वाच्य है। अर्थात् जगत् स्रष्टा ही ईश्वर है।

साहित्य में अनेक उदाहरण हैं, जहाँ सम्पन्न व्यक्ति को भी ईश्वर कह दिया गया है। तद्यथा-

'**दरिद्रान्भर कौन्तेय मा प्रयच्छेश्वरे धनम्**'-हि. १.१५

तथा-'**ईश्वरं लोकोऽर्थतः सेवते**' मुद्रा. १.१४ आदि।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास में 'ओ३म्' की व्याख्या करते हुए मकार (ओ३म्=अ, उ, म् में से अन्तिम अक्षर) से ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ का ग्रहण किया है। इससे ज्ञापित है कि ओ३म् विशेष्य और ईश्वर उसका विशेषण है। लोक में ऐश्वर्य सम्पन्न व्यक्ति के लिए ईश्वर शब्द का प्रयोग गौणोपचार है।

भगवान्- भगवान् शब्द भी विशेषण है। भगवान् शब्द '**भज सेवायाम्**' (भ्वादि.) धातु से मतुप् प्रत्यय होकर निष्पन्न होता है। आप्टे के अनुसार-यशस्वी, प्रसिद्ध, सम्मानित, श्रद्धेय, दिव्य, पवित्र आदि अर्थ हैं (द्र.-आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. ७२७)।

महर्षि दयानन्द के अनुसार-(**भज सेवायाम**) इस धातु से 'भग' इससे मतुप् होने से '**भगवान्**' शब्द सिद्ध होता है।

'**भगः सकलैश्वर्यं सेवनं वा विद्यते यस्य स भगवान्**'

जो समग्र ऐश्वर्य से युक्त या भजने के योग्य है इसलिए उस ईश्वर का नाम 'भगवान्' है।- सत्यार्थप्रकाश समु. १, पृ. २३ तथा सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में-

'**भगो विद्यते यस्य स भगवान्**'

जो अनन्त ज्ञान, अनन्त वैराग्य आदिक गुणों से युक्त होने से परमेश्वर का नाम भगवान् है-(पृ. २२)।

भग शब्द के सन्दर्भ में प्रसिद्ध श्लोक है-

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसश्श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।।

वि.पु. ६.५.७४

ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छः पदार्थों की भग संज्ञा है। ये छहों समग्र रूप से जिसे उपलब्ध हों, उसे भगवान् कहा जा सकता है। लोक में ये पदार्थ किसी भी व्यक्ति को समग्ररूप से उपलब्ध होने असम्भव

हैं। व्यक्ति कितना भी समर्थ क्यों न हो, उसे इनकी उपलब्धता आंशिक ही होगी। उस आंशिक उपलब्धता वाले व्यक्ति को भी लोक में भगवान् कह दिया जाता है। तद्यथा- दुष्यन्त ने कण्व ऋषि का कुशलक्षेम पूछते हुए- **'अथ भगवान् कुशली काश्यपः'** अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

इस प्रकार संक्षेप में कह सकते हैं कि- ईश्वर व भगवान् दोनों पद जगत् स्रष्टा ईश्वर के वाचक हैं। उपर्युक्त गुणों के आंशिक रूप में किसी व्यक्ति में होने पर उस मनुष्य के लिए भी ये प्रयुक्त कर दिए जाते हैं, किन्तु मुख्यार्थ जगत् स्रष्टा ईश्वर ही है।

२. कल्प- कल्प शब्द के अनेक अर्थ हैं, किन्तु आपकी शङ्का से सम्बद्ध कल्प का अभिप्राय है-ब्रह्मा का एक दिन=ब्राह्मदिन। एक हजार चतुर्युग का काल अर्थात् चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष का काल कल्प है।

रामचरितमानस की उपर्युद्धृत चौपाई में पठित कल्प शब्द उक्त अर्थ की दृष्टि से असंगत हो जाता है। चौपाई में-'बीते कल्प सात अरु बीसा' कथन होने से यहाँ कल्प शब्द वर्तमान सातवें वैवस्वत् मन्वन्तर की व्यतीत सत्ताईस चतुर्युगी के काल ४३२००००×२७=११६६४०००० ग्यारह करोड़, छप्पन लाख चालीस हजार वर्ष का बोधक मानने पर चौपाई का अर्थ संगत हो जाता है। क्योंकि वर्तमान कल्प-ब्राह्मदिन/सृष्टि के छः मन्वन्तर (१. स्वायंभव २. स्वारोचिष ३. औत्तमि ४. तामस ५. रैवत ६. चाक्षुष) व्यतीत हो चुके हैं। वर्तमान सातवाँ वैवस्वत् मन्वन्तर चल रहा है। इसकी भी सत्ताईस चतुर्युगी पूर्ण होकर अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के सत्य, त्रेता, द्वापर व्यतीत होकर कलि चल रहा है। अतः सत्ताईस कल्प बीतने का अभिप्राय यहाँ सत्ताईस चतुर्युग का व्यतीत होना है।

व्याकरण एवं दर्शन के अध्ययन हेतु प्रवेश प्रारम्भ

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी **परोपकारिणी सभा के द्वारा 'महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल' ऋषि उद्यान, अजमेर** में पिछले १८ वर्षों से प्रारम्भिक संस्कृत ज्ञान, पाणिनीय व्याकरण और दर्शनों के अध्ययन-अध्यापन का कार्य सुचारु रूप से चल रहा है। अतः व्याकरण एवं दर्शन पढ़ने के इच्छुक विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।

इस काल में ऋषि उद्यान में प्रतिदिन यज्ञोपरान्त उपदेश व प्रवचन का लाभ भी प्राप्त हो सकेगा। समय-समय पर विविध विषयों पर विद्वानों द्वारा कक्षायें भी होती रहेंगी। ब्रह्मचारियों के लिए निवास और भोजन व्यवस्था निःशुल्क रहेगी। प्रवेश लेने वाले ब्रह्मचारियों के लिए निम्नलिखित बातें ध्यान देने योग्य हैं-

- आयु न्यूनतम १६ वर्ष हो।
- न्यूनतम १०वीं कक्षा पढ़े हुए विद्यार्थी प्रवेश ले सकेंगे।
- गुरुकुल के अनुशासन का पालन करना अनिवार्य होगा।

अधिक जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

स्वामी विष्वङ् परिव्राजक - ९४१४००३७५६

समय- ९:००-१०:००प्रातः, १२:३०-१:३० मध्याह्न

पता- महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल, ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर (राज.) ३०५००१

इस बात का निश्चय है कि ब्रह्मचर्य्य, उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्मा का बल, आरोग्य, पुरुषार्थ, ऐश्वर्य, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम-नियम और उत्तम सहाय्य के विना किसी मनुष्य से गृहाश्रम धारा जा नहीं सकता। **- महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.३१**

जब तक मनुष्य सुख-दुःख, हानि और लाभ की व्यवस्था में परस्पर अपने आत्मा के तुल्य दूसरे को न जानते तब तक पूर्ण सुख को प्राप्त नहीं होते, इससे मनुष्य लोग श्रेष्ठ व्यवहार ही किया करें। **- महर्षि दयानन्द, यजु.,भा ५.४०**

अतिथि यज्ञ के होता बनें

महर्षि दयानन्द सरस्वती की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा आर्य जगत् की एकमात्र ऐसी संस्था है जो सामूहिक सहयोग से ऋषि द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति हेतु कृत संकल्प है।

सभा निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर है। निरंतर अबाध गति से ऋषि उद्यान को आकर्षक एवं जन उपयोगी बनाने हेतु नव निर्माण करा रही है, वेद प्रचार पूरे देश में संचालित कर रही है, वेदों का एवं ऋषि ग्रंथों का प्रकाशन निरंतर जारी है।

प्रातः एवं सायं दैनिक यज्ञ- प्रवचन, वेद-पाठ, उपनिषद्, दर्शनादि शास्त्रों की कथा द्वारा वैदिक धर्म का कार्य नियमित रूप से आश्रम में चलता है। ***गुरुकुल***- आर्ष पद्धति से संचालित गुरुकुल में पढ़ रहे ब्रह्मचारी जो साधना एवं समाज सुधार का लक्ष्य लेकर अध्ययनरत हैं उनकी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति निःशुल्क की जाती है। ***अतिथि सेवा***- अतिथियों को यथोचित सुविधा प्रदान करने हेतु सभा पूर्णरूपेण प्रयासरत है एवं सभी सुविधाएँ आवास, प्रातराश, भोजन की व्यवस्था निःशुल्क की जाती है। ***गोशाला***- गोशाला में चालीस के लगभग पशु हैं। इससे अधिक का स्थान नहीं है। आश्रमवासियों को गोशाला में उत्पादित दुग्ध का निःशुल्क वितरण किया जाता है। ***वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम***- वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम में रहकर साधनारत वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों की सभी प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति सभा द्वारा निःशुल्क की जाती है। स्वाध्याय एवं साधना की व्यवस्था है। ***विशाल पुस्तकालय***- इसमें दुर्लभ ग्रंथों का संग्रह है, सभा द्वारा शोधकर्ता छात्रों को शोध कार्य हेतु ग्रंथ निःशुल्क प्रदान किए जाते हैं जिनका लाभ स्वाध्यायशील व्यक्ति भी उठा सकते हैं। ***व्यायामशाला***- योग्य शिक्षक द्वारा नगर के युवाओं को ऋषि उद्यान में निःशुल्क व्यायाम प्रशिक्षण दिया जाता है। सभा द्वारा नियुक्त व्यायाम शिक्षक आसपास के गांवों में भी आर्यवीर दल का प्रशिक्षण शिविरों में प्रदान करते हैं।

ये सभी क्रियाकलाप आपके पावन उदार सहयोग से ही संभव हैं। जैसा कि सर्वविदित है कि सभा का आधार ही आकाशीय दानवृत्ति है। आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और उसको एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय।

सभा के धार्मिक क्रियाकलापों एवं आवासीय स्थल ऋषि उद्यान में उपर्युक्त पावन क्रियाकलाप लम्बे समय तक अबाध चलते रहें इसके लिए सभा की योजना है कि प्रतिदिन १० रुपये अथवा प्रतिवर्ष ५ हजार की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी सदस्यों में अंकित किया जाता है ऐसे सज्जनों के नाम का परोपकारी में प्रकाशन भी किया जाता है।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे तो उसका उल्लेख आश्रम के सूचना पट्ट पर किया जा सकेगा।

यह अल्प राशि आप दैनिक संचय घट में जमा भी कर सकते हैं, वर्ष में लोग अरबों रुपए आग में पटाखे जलाकर व्यय करते हैं, असावधानी से बिजली जलती छोड़ इसे गंवा देते हैं आदि ऐसी छोटी-छोटी असावधानियों को रोक कर हम उसकी बचत राशि इस पावन कृत्य हेतु सभा को वर्ष में आसानी से दे सकते हैं।

सभा शिविरों के आयोजन द्वारा जन सामान्य को ऋषियों की जीवन प्रणाली सिखा रही है। आप इस योजना में स्थायी सदस्य बनकर ऋषि का संकल्प *संसार का उपकार* की पूर्ति में एक स्तम्भ बनकर सभा को सम्बल प्रदान कर सकते हैं।

यदि अपने सामर्थ्य के अनुसार राशि को न्यूनाधिक करना चाहें तो आपकी स्वतन्त्रता है अधिक से अधिक लोग परोपकारिणी सभा से जुड़ सकें, आप ऐसा करके ऋषि दयानन्द के कार्यों को आगे बढ़ाने में सहायक होंगे इसलिए ऐसी राशि निश्चित की है। आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं। आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अतः आपसे निवेदन है कि आप भी अतिथि यज्ञ के होता बनिये। जिन महानुभावों ने हमारा निवेदन स्वीकार कर यज्ञ में अपनी आहुति दी है, उनके नाम यहाँ प्रकाशित किये जा रहे हैं।

अतिथि यज्ञ के होता
(१६ से ३१ मार्च २०१८ तक)

१. श्री अशोक कुमार गुप्ता, दिल्ली २. स्वस्तिकॉम चैरिटेबल ट्रस्ट, अमरावती ३. श्री प्रदीप कुमार व श्रीमती रोशनी आर्य, गुरुग्राम ४. श्रीमती सरिता आनन्द, नई दिल्ली ५. श्री बाबूलाल चौहान, अजमेर ६. श्री शान्तिस्वरूप गोयल, लुधियाना ७. कर्नल अनिल सिंघल, नई दिल्ली ८. श्रीमती सीमा गुप्ता, बिलासपुर ९. कु. पल्लवी गुप्ता, कोलकाता १०. श्री किशन गुप्ता, कोलकाता ११. सुश्री वेदिका गुप्ता, कोलकाता १२. सुश्री विदुषी गुप्ता, कोलकाता १३. सुश्री नीतू गुप्ता, कोलकाता १४. श्री वेदान्त गुप्ता, कोलकाता १५. श्री किशन गुप्ता व श्रीमती नीतू गुप्ता, कोलकाता १६. श्री विनोद गुप्ता, कोलकाता १७. श्री विनोद गुप्ता व श्रीमती अनिता गुप्ता, कोलकाता १८. श्रीमती अनिता गुप्ता, कोलकाता १९. श्री अंकित गुप्ता, कोलकाता २०. श्री आयुष गुप्ता, कोलकाता २१. सुश्री आस्था गुप्ता, कोलकाता २२. श्री बजरंग गुप्ता व श्रीमती रुचि गुप्ता, कोलकाता २३. श्री बजरंग गुप्ता, कोलकाता २४. श्रीमती रुचि गुप्ता, कोलकाता २५. सुश्री परिधि गुप्ता, कोलकाता २६. श्री अनंत गुप्ता, कोलकाता २७. श्री विनय गुप्ता व श्रीमती सीमा गुप्ता, कोलकाता २८. श्री विनय गुप्ता, कोलकाता २९. श्रीमती सीमा गुप्ता, कोलकाता ३०. श्री गौरव गुप्ता, कोलकाता ३१. श्रीमती सादिका गुप्ता, कोलकाता ३२. श्री अंकित गुप्ता व श्रीमती सादिका गुप्ता, कोलकाता ३३. श्रीमती स्वाति गुप्ता, कोलकाता ३४. श्री आयुष गुप्ता व श्रीमती स्वाति गुप्ता, कोलकाता ३५. सुश्री आशिका गुप्ता, कोलकाता ३६. सुश्री आशिका गुप्ता व श्री गौरव गुप्ता, कोलकाता ३७. श्री आयुष्मान शिवांक गुप्ता, कोलकाता ३८. श्री दीनदयाल गुप्ता व श्रीमती सुन्दरकला गुप्ता, कोलकाता ३९. श्री दीनदयाल गुप्ता, कोलकाता ४०. श्रीमती मिथलेश चौहान, बंगलौर ४१. श्रीमती कमला यादव, बीकानेर ४२. श्रीमती उर्मिला जयदेव अवस्थी, जोधपुर ४३. श्री देशराज आर्य, दिल्ली ४४. श्रीमती राजकुमारी गुप्ता, दिल्ली ४५. श्री रवि कुमार, दिल्ली ४६. श्री अरुण कुमार मीणा, अजमेर ४७. श्री सुरेन्द्र सिंह, ऋषि उद्यान, अजमेर ४८. श्रीमती अन्जु अग्रवाल, नई दिल्ली ४९. श्री सत्यदेव वर्मा, औरंगाबाद ५०. सुश्री मेनका डाबे, अहमदाबाद ५१. आर्य कमल धवन, दिल्ली ५२. कु. सुनीता, डीसा ५३. श्री मोहनलाल आर्य (मुमुक्षु मुनि), ऋषि उद्यान, अजमेर ५४. श्री सीताराम आर्य, मेरठ ५५. डॉ. रमेश मुनि, ऋषि उद्यान, अजमेर ५६. श्री दिवाकर, नागपुर ५७. श्री अशोक कुमार आर्य, ब्यावर, अजमेर ५८. स्वामी सोमानन्द, ऋषि उद्यान, अजमेर ५९. सुश्री मीमांसा शर्मा, दिल्ली ६०. सुश्री प्रणीता शर्मा, दिल्ली ६१. श्री यथार्थ शर्मा, दिल्ली।

परोपकारिणी सभा, अजमेर।

गोभक्तों से निवेदन

ऋषि-उद्यान में परमार्थ हेतु गौशाला संचालित है। गौशाला की गौवों के दूध का वितरण सभी गुरुकुलवासियों, संन्यासियों एवं आगन्तुक अतिथियों में निःशुल्क किया जाता है। आप सभी गौ-भक्तों एवं उदारमना दानदाताओं से सभा का निवेदन है कि गौवों को उत्तम चारा मिले, इसके लिए जो भी सज्जन चारा दान देना चाहें उनका स्वागत है। यदि आप दूरस्थ प्रदेश के हैं तो कृपया चारे हेतु अनुमानित राशि सभा को ड्राफ्ट/चैक/नगद भेज सकते हैं। यशस्वी दानदाताओं के नाम परोपकारी पत्रिका में प्रकाशित किए जाएँगे। आपका दान गौवों के संवर्धन में सहायक होगा।

ऋषि-उद्यान में संचालित गौशाला के दानदाता
(१६ से ३१ मार्च २०१८ तक)

१. श्री हरसहाय सिंह आर्य, बरेली २. श्री जगमोहनलाल गुप्ता, नई दिल्ली ३. श्री दिवाकर आर्य, गुरुग्राम ४. आर्यसमाज, जागृति विहार, मेरठ ५. श्री शान्तिस्वरूप गोयल, लुधियाना ६. श्री मानिकचन्द जैन, डीडवाना, नागौर ७. श्री सुनील गर्ग, गाजियाबाद ८. श्री राधेश्याम चैनप्रकाश सोनी ९. श्री चन्द्रप्रकाश झँवर, भीलवाड़ा १०. श्री जयपाल आर्य, बारां ११. श्री प्रवीर व श्रीमती अपूर्वा माथुर, अमेरिका १२. श्री रामरतन विजयवर्गीय, अजमेर १३. श्री राजीव सिंह, बीकानेर १४. श्री जसवन्त कुमार, श्रीगंगानगर १५. श्री मोहनलाल आर्य (मुमुक्षु मुनि), ऋषि उद्यान, अजमेर १६. श्रीमती चन्द्रवती, अजमेर १७. श्री जितेन्द्र कुमार, रेवाड़ी १८. श्री देवेन्द्र सिंह, रेवाड़ी १९. श्री अलोक माथुर, नोएडा २०. श्रीमती कुमुदिनी आर्य व श्री वासुदेव आर्य, अजमेर २१. श्री विपिन, दिल्ली। **- परोपकारिणी सभा, अजमेर।**

पं. पद्मसिंह शर्मा

डॉ. वेद प्रकाश 'विद्यार्थी'

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्ध से लेकर अद्यायावत् महर्षि के समुज्ज्वल जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर विभिन्न क्षेत्रों में स्वयं को धन्य करने वाले महापुरुषों के नामों से संसार परिचित ही है। महर्षि की विद्वत्ता, ब्रह्मचर्य, वाग्मिता, तप-त्याग, निर्भीकता और लोकोपकार की प्रबल भावना ने देश-विदेश के अगणित लोगों को स्वयं का प्रशंसक और अनुयायी बना लिया था। राजे-महाराजों, श्रेष्ठिवर्ग, वैज्ञानिकों, राष्ट्रप्रेमी क्रान्तिकारियों और राजनीतिज्ञों में महर्षि एक प्रबल प्रेरणा के रूप में उपस्थित रहे।

हिन्दी साहित्य की दृष्टि से महर्षि का काल संक्रान्ति काल था। राष्ट्रीय चेतना के आलोक में महर्षि के विचार हिन्दी के तत्कालीन उदीयमान लेखकों को एक नई ऊर्जा प्रदान करते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके पश्चात् के हिन्दी-लेखक महर्षि से पर्याप्त प्रभावित रहे। उनके साहित्य में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से महर्षि और उनकी विचारधारा का वर्णन प्राप्त है।

हमारे चरितनायक श्रीमान् पं. पद्मसिंह शर्मा का जीवन और उनके साहित्य-कर्म महर्षि के विचारों के प्रचार-प्रसार के संवाहक बने। अपने समकालीन साहित्यकारों, पत्रकारों में वे अत्यन्त समादृत और प्रसिद्धि प्राप्त थे। पं. जी का जन्म संवत् १९३३ वि. में ग्राम नायकनगला (जिला बिजनौर) में श्री उमराव सिंह जी के यहाँ हुआ था। वे धनाढ्य कृषक थे और उनके जमींदारी भी थी। जैसा कि उन दिनों धनी परिवारों में होता था, पंडित जी की भी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही पंडितों को रखकर प्रारम्भ हुई। संस्कृत का कौमुदीपरक ज्ञान और काव्यग्रन्थों का अध्ययन भी घर पर ही हुआ। महर्षि के शिष्य पं. भीमसेन शर्मा के प्रयाग-स्थित संस्कृत-विद्यालय में प्रवेश लेकर उन्होंने अपने संस्कृत-अध्ययन को और सुदृढ़ किया। कहना न होगा कि यहाँ उनका अध्ययन अष्टाध्यायी-पद्धति से हुआ। इसके पश्चात् उन्होंने बनारस, मुरादाबाद, लाहौर, जालन्धर इत्यादि स्थानों पर रहकर भी विद्याभ्यास किया, जिससे उनके ज्ञान में पर्याप्त वृद्धि हुई और उनको समालोचनात्मक दृष्टि प्राप्त हुई। पंडित जी की उर्दू, फारसी की शिक्षा मौलवियों द्वारा संपन्न कराई गई थी, जिससे उनके तुलनात्मक भाषाशास्त्रीय और साहित्यिक ज्ञान में अभिवृद्धि हुई। प्रखर बुद्धि के होने के कारण उन्होंने अपने वैदिक ज्ञान के साथ-साथ लौकिक साहित्य में भी आशातीत उपलब्धि प्राप्त की।

उनकी विद्वत्ता को देखते हुए १९०४ में उन्हें गुरुकुल कांगड़ी में अध्यापक नियुक्त किया गया। गुरुकुल में उन दिनों विभिन्न विषयों के विद्वान् प्राध्यापक नियुक्त थे, साथ ही राजनीति एवं साहित्य के विद्वानों का भी वहाँ आवागमन होता रहता था जिनका सान्निध्य पंडित जी को भी प्राप्त हुआ। उसी समय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने हरिद्वार में 'सत्यवादी' साप्ताहिक पत्र प्रारम्भ किया हुआ था, जिसके सम्पादक प्रख्यात विद्वान् सम्पादकाचार्य पं. रुद्रदत्त शर्मा थे। उन्हीं के सम्पादकीय सहयोगी बनकर इस पत्र के माध्यम से पंडित जी ने सम्पादन के क्षेत्र में यात्रा प्रारम्भ की।

श्रीमती परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'परोपकारी' प्रथम बार प्रकाशनोपरान्त किन्हीं कारणों से बन्द हो चुकी थी। सभा ने संवत् १९६४ वि. में पत्रिका के पुन: प्रकाशन का निर्णय लिया। पत्रिका प्रकाशित होने लगी और एक वर्ष पश्चात् इसमें शर्मा जी की संपादक के रूप में नियुक्ति हुई। उन्होंने परोपकारी को अल्पकाल में ही उच्चस्तरीय पत्रिका बनाने के लिए घोर परिश्रम किया। आर्यसमाज के वैदिक विद्वानों के साथ-साथ आर्यसमाजी साहित्यकारों को भी इसमें लिखने के लिए प्रेरित किया। महाकवि नाथूराम शर्मा 'शंकर' उनकी पसन्द के विशिष्ट कवि थे, जिनसे वे समस्यापूर्तियाँ कराने के साथ-साथ प्रसिद्ध शायरों के शेर और श्लोकों का छन्दोबद्ध हिन्दी अनुवाद कराया करते थे। उनके काल में पत्रिका ने पर्याप्त उन्नति की और वैदिक सिद्धान्तों का प्रचुरता से प्रचार-प्रसार हुआ। इसी बीच अजमेर में ही उन्होंने 'अनाथरक्षक' का भी सम्पादन किया, जो दयानन्द अनाथालय अजमेर

की ओर से प्रकाशित होता था।

स्वल्प काल के पश्चात् ही शर्मा जी स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज द्वारा स्थापित गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में अध्यापनार्थ पहुँचे। यहाँ वे सुदीर्घ काल तक रहे और गुरुकुल के मुखपत्र 'भारतोदय' का सम्पादन भी करते रहे। इस पत्र को भी उन्होंने सामग्री के वैशिष्ट्य के कारण ख्याति के शिखर तक पहुँचा दिया। प्रसिद्ध विद्वानों और साहित्यकारों की रचानाएँ इसमें प्रकाशित हुईं और इसके अंक संग्रहणीय बने।

बाद में शर्मा जी प्रसिद्ध समाजसेवी और स्वतन्त्रता सेनानी काशीवासी बाबू शिवप्रसाद गुप्त के अनुरोध पर काशी पहुँच गए और 'ज्ञानमण्डल प्रेस' में सम्पादन का कार्यभार संभाला। उनके संपादन में ज्ञानमण्डल से अनेक महत्त्पूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ । यहाँ से शर्मा जी ने हिन्दी समालोचना पर ध्यान केन्द्रित किया और विभिन्न विषयों पर निबन्ध लेखन किया। उन दिनों हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए चर्चित एवं प्रख्यात प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय हिन्दी सम्मेलनों की उन्होंने अध्यक्षता की। हिन्दी और उर्दू के स्वरूप और सम्बन्धों को लेकर उन्हेंने एक बृहद् आलेख लिखा- 'हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी', जो अपनी विषय-वस्तु एवं विवेचनात्मक शैली के लिए आज भी प्रांसगिक माना जाता है। शर्मा जी को 'सम्पादकाचार्य' की उपाधि तो प्रशंसकों द्वारा दी जा चुकी थी, अब उन्होंने हिन्दी के विशिष्ट कवि 'बिहारी' के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'बिहारी सतसई' के लोक और काव्य सौन्दर्य का विवृत्तिपरक 'संजीवन भाष्य' लिखा जो बहुप्रशंसित रहा और जिसके पक्ष-विपक्ष में अनेक लेख लिखे गए। उनका शर्माजी ने विशिष्ट शैली में विद्वत्तापूर्वक ढंग से उत्तर दिया, जो पठनीय है।

शर्मा जी के लिखे हुए लेखों और संपादनों की सूची विस्तृत है। आर्यसमाज के ख्यातिप्राप्त विद्वानों के ग्रन्थों की भूमिकाएँ भी उन्होंने साहित्यिक एवं सैद्धान्तिक दृष्टि से समृद्ध रूप में लिखीं। पं. चमूपति जी के प्रसिद्धग्रन्थ 'चौदहवीं का चाँद' की भूमिका, अभयदेव जी के 'तरंगित हृदय' की भूमिका तथा 'वृक्षों में जीव' विषय पर स्वामी दर्शनानन्द जी और पं. गणपति शर्मा के मध्य महाविद्यालय, ज्वालापुर में हुए शास्त्रार्थ के प्रकाशन की परिचयात्मक एवं भावप्रवण भूमिका उनकी विशिष्ट शैली का दिग्दर्शन कराती हैं, जिसका प्रवाह देखते ही बनता है। मुहावरों, शेरों, श्लोकों, मन्त्रों का यथास्थान सुसम्बद्ध रूप से प्रयोग करने में उन्हें महारत प्राप्त थी।

ऐसे गुणी, महर्षि के अनुयायी, सम्पादकाचार्य एवं विभिन्न विषयों के सिद्धहस्त लेखक पं. पद्मसिंह शर्मा का देहान्त ७ अप्रैल १९३२ में प्लेग नामक बीमारी से स्व-ग्राम में हुआ, जो महामारी के रूप में जानी जाती थी।

पाठकों को 'पद्मपराग' में संकल्पित उनके निबन्धों का अवलोकन करना चाहिए, जिसमें स्वामी दयानन्द, भगवान् श्री कृष्ण, स्वामी दर्शनानन्द, पं. गणपति शर्मा, पं. भीमसेन शर्मा जी की जीवनियों का मार्मिक चित्रण प्राप्त होता है। कलकत्ता से प्रकाशित तत्कालीन प्रसिद्ध हिन्दी पत्रिका 'विशाल भारत' ने शर्मा जी की स्मृति में विख्यात विद्वान् श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के संपादन में एक विशेषांक का प्रकाशन भी किया था। कीर्तिशेष दर्शनाचार्य पं. उदयवीर शास्त्री ने अपनी आत्मकथा 'जीवन के मोड़' में उनका एक संस्मरण दिया है, जब वे कलकत्ता से लौटते वे प्रयाग में विख्यात् शायर श्रीमान् अकबर इलाहाबादी से शास्त्री जी को मिलाने ले गए थे और वे महान् शायर, जो मजिस्ट्रेट भी रहे थे, शर्मा जी से बहुत तपाक से मिले थे। कहना न होगा कि शर्मा जी का कार्यक्षेत्र विशाल था और उनकी विद्वत्ता का सर्वत्र सम्मान था। वास्तव में वे स्मरणीय और आर्यसमाज के गौरव थे। अपने साहित्य के माध्यम से वे अमर हैं-

'नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्।।'

जब तक सबकी रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५२

पाठकों की प्रतिक्रिया

माननीय सम्पादक जी,

सादर नमस्ते! आपके परोपकारी पत्रिका के मार्च प्रथम अंक २०१८ में प्रकाशित 'कश्मीर समस्या का समाधान' सम्पादकीय सराहनीय है। कश्मीर समस्या भारत की आजादी के साथ व्याधिरूप में खड़ी हुई और तत्कालीन प्रधानमन्त्री की अदूरदर्शी और पक्षपाती नीतियों के कारण यह समस्या समाप्त होने की अपेक्षा निरन्तर बढ़ती ही रही।

महाराजा हरिसिंह के विरुद्ध शेख अब्दुल्ला के द्वारा दी जा रही शह के कारण और अब भी राजनीतिक रोटियाँ सेंकने के लिए फारुख अब्दुल्ला और उमर अब्दुल्ला के द्वारा वर्तमान सरकारी नीतियों का विरोध और नम्बर दो पर राष्ट्रीय राजनीतिक पार्टी का असहयोग तथा विरोध के द्वारा समस्या के समाधान में व्यवधान डालना दुर्भाग्यपूर्ण है।

आपके सुझाव के अनुसार राष्ट्र के धार्मिकजनों और संस्थाओं को चाहिए कि राष्ट्र की एकता और अखण्डता के लिए वर्तमान सरकार की दमनकारी ताकतों को तोड़ने की नीतियों का समर्थन कर जम्मू-कश्मीर के सामाजिक ढाँचे को सुदृढ़ करें और जनता की सोच को सुधारें और शासन के सहयोग के लिये तैयार करें।

(२) माह मार्च द्वितीय २०१८ के अंक में आपका सम्पादकीय 'महर्षि दयानन्द और उनका वेद प्रचार' पढ़कर मन गदगद हो गया। **आपके ऋषि के प्रति उल्लिखित उद्गार अद्वितीय हैं और निष्ठावान् हैं, जिससे ऐसा लगता है कि पूज्य धर्मवीर जी की कमी को आप पूर्ण कर रहे हो। परोपकारिणी सभा ने आपको सम्पादक का दायित्व सौंपकर हमारी आकांक्षाओं के साथ न्याय किया है।** आप द्वारा पुराने उपयोगी लेखों को पत्रिका में सम्मिलित करना पाठकों के लिए लाभदायक है, जिसके लिए धन्यवाद।

भवदीय

डॉ. कृष्ण लाल डंग, बदरीपुर, पांवटा साहिब, (हि.प्र.)

सब व्यवहार करने वालों को चाहिये कि जो मनुष्य जिस काम में चतुर हो उसको उसी काम में प्रवृत्त करें।

-महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.२०

पाठकों के विचार

मॉरिशस ने अपनी पचासवीं वर्षगाँठ मनायी। इस चौरंगा फहराया गया। मोरिशस चार रंगों में रंग गया। सारी जनता खुश। परिवारसहित उत्सव मनाया गया। इस शुभावसर पर महान् भारत के राष्ट्रपति श्री रामनाथ कोविंद जी ढेर सारे आशीर्वाद लेकर आये थे। अपने ही भाईयों को देश का संचालन करते देख बहुत प्रसन्न हुए। उनका कहना था ऐसा नहीं लगता वे भारत से बाहर किसी दूसरे देश में हैं।

यहाँ पहले से ही भारतीय उच्चायोग है। महात्मा गाँधी संस्थान, रवीन्द्रनाथ संस्थान, इन्दिरागाँधी भारतीय सांस्कृतिक केन्द्र भी है। विशेष बात है कि विश्व हिन्दी सचिवालय का उद्घाटन आपके ही कर कमलों द्वारा हुआ। हिन्दी संसार की चरम चोटी पर है और भविष्य में चढ़ेगी भी। बहुदेशीय जनता यहाँ बसती है। बहुजातीय सम्प्रदाय के लोग हैं। भाई-भाई का नाता अटूट है और अटूट ही रहेगा। सागर की गहराई दोनों देशों को अलग नहीं कर सकता। ईश्वर से प्रार्थना है कि हमारा साथ बराबर बँधा रहे।

जय भारत, जय मॉरिशस

एक दर्शक - **सोनालाल नेमधारी**

शोक समाचार

आर्यसमाज के निष्ठावान् कार्यकर्ता, दानी एवं कई आर्य संस्थाओं के पदाधिकारी व सहयोगी, सूरसागर-जोधपुर, राज. निवासी श्री जयसिंह गहलोत का देहान्त दीर्घकालिक रोग के पश्चात् दि. ८ अप्रैल २०१८ को हो गया। वे अहमदाबाद के चिकित्सालय में भर्ती थे, वहीं पर उनका प्राणोत्सर्ग हुआ। अन्त्येष्टि संस्कार ९ अप्रैल को प्रातः वेद-विदुषी आचार्या सूर्यादेवी एवं गुरुकुल शिवगंज की ब्रह्मचारिणियों ने पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न करवाया।

उनके पुत्र श्री सोमेन्द्र एवं श्री भरत भी आर्यसमाज एवं आर्यवीर दल की गतिविधियों में सक्रिय रहते हैं। श्री जयसिंह जी परोपकारिणी सभा के अनन्य सहयोगी रहे, इस घटना से सभा को आघात लगा है। इस दु:खद समय में परोपकारिणी सभा शोक संतप्त परिवार के लिये प्रभु से धैर्य व साहस की कामना करते हुए दिवंगतात्मा के प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती है।

गौतम बुद्ध और वेद

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

कोई भी महापुरुष जब लोकोपकार की भावना से कार्य करता है, तब वह सबके लिये पूज्य हो जाता है। यद्यपि वह अपने जीवन में पाखण्डों व अन्धविश्वासों का विरोधी होता है, परन्तु उसके अनुयायी प्रायः उनकी बातों को यथार्थ रूप में न समझकर एक नये दुराग्रह को जन्म दे देते हैं। ऐसा ही कुछ महात्मा बुद्ध के विचारों के साथ हुआ। सामान्य मान्यतानुसार उन्हें नास्तिक अर्थात् अनीश्वरवादी एवं वेदविरोधी कहा जाता है, परन्तु उनके विचार तो वेद को स्वीकार करते हैं। इसी सत्यता को बताने के उद्देश्य से बुद्धपूर्णिमा (30 अप्रैल) के अवसर पर 'परोपकारी' की ओर से यह लेख पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है। -सम्पादक

भारतीय महापुरुषों में उल्लेखनीय गौतम बुद्ध के विषय में यह सामान्य धारणा है कि वे वेदों के विरोधी थे। इसका कारण बौद्ध दार्शनिकों की एवंविद् व्याख्या है। वस्तुतः तथागत गौतम बुद्ध ने वेदों की निन्दा कहीं नहीं की है। महात्मा बुद्ध कहते हैं **"सच्चा वेदज्ञ वह है जो श्रमणों और ब्राह्मणों के वेदों को जानकर सब वेदनाओं के विषय में वीतराग होकर सबको अनित्य जानता है वही सच्चा वेद का ज्ञाता है"**-

१. वेदानि विचेय्य केवलानि समणानं यानि पर अत्थि ब्राह्मणानं। सब्बा वेदनासु वीतरागो सब्बं वेदमनिच्च वेदगू सो।।

(सुत्तनिपात ५२९)

२. विद्वा च वेदेहि समेच्च धम्मं।
न उच्चावयं गच्छति भूरिप्पञ्जो।।

(सुत्तनिपात ७९२)

इसकी संस्कृतच्छाया है-

विद्वांश्च वेदैः समेत्य धर्मं, न उच्चावचं गच्छति भूरिप्रज्ञः।

अर्थात् जो विद्वान् वेदों के द्वारा धर्म का ज्ञान प्राप्त करता है वह ऊँची-नीची अवस्था को नहीं प्राप्त करता अर्थात् उसकी डाँवाडोल स्थिति (अवस्था) नहीं होती। वेदज्ञ ब्राह्मण की प्रशंसा में भगवान् बुद्ध कहते हैं-

३. यं ब्राह्मणं वेदगूं अभिजञ्ञा अकिंचनं कामभवे असत्तम्। अद्धाहि सो ओघमिमं अतारि तिण्णो च पारं अरिबलो अङ्खो।।

(सुत्त निपात श्लोक १०५९)

अर्थात् जिसने उस वेदज्ञ ब्राह्मण को जान लिया, जिसके पास कुछ धन नहीं और जो सांसारिक कामनाओं में आसक्त नहीं, आकांक्षारहित वह सचमुच इस संसार सागर से पार हो जाता है।

४. विद्वा च सो वेदगु नरो इध, भवाभवे संगं इमं विसज्जा। सो वीततण्हो अनिघो निरासो अतारि सो जाति जरांति ब्रूमीति।। (सुत्त निपात, श्लोक १०६०)

अर्थात् वेद को जानने वाला विद्वान् इस संसार में, जन्म या मृत्यु में आसक्ति का परित्याग करके और तृष्णा तथा पापरहित होकर जन्म और जरा से पार हो जाता है, ऐसा मैं कहता हूँ।।

इस प्रकार वेद और वेदज्ञ ब्राह्मणों की प्रशंसा के अनेक वचन गौतम बुद्ध के उपदेशों में पाये जाते हैं। वस्तुतः उस समय के वेदज्ञ पण्डित दो बड़े दोषों से युक्त थे-

(१) वैदिक यज्ञों में पशुबलि।

(२) जन्म से ब्राह्मणत्व का अभिमान।

उन ब्राह्मणों की मान्यता थी गोमेध अश्वमेध या जिन यज्ञ-यागादिकों को वे वेदमन्त्रों से सम्पन्न कराते थे, उन यज्ञ-यागों में अज, मेष, अश्व, गौ आदि निरीह प्राणियों की बलि दी जाती थी। उनका यह मिथ्या विश्वास था कि इन हिंसापरक यज्ञों से इन पशुओं को स्वर्ग की प्राप्ति होती है तथा यजमान भी स्वर्ग को प्राप्त करता है।

समाज में ब्राह्मणों का स्थान ऊँचा था। ब्राह्मणत्व का निर्धारण उसके आचरण या कर्म से न होकर उसके जन्म या कुल से होता था। तत्कालीन ब्राह्मण-वर्ग ने समाज के बहुसंख्यक वर्ग को अस्पृश्य घोषित कर दिया था, उनके सामाजिक और धार्मिक अधिकार बहुत ही न्यून कर रखे

थे, उनकी समाज में शोचनीय स्थिति थी। इस प्रकार की अन्यायमूलक-विषमतापरक दृष्टि के विरुद्ध तथागत बुद्ध ने अपनी आवाज बुलन्द की। गौतम बुद्ध की असीम करुणा और उदात्त व्यक्तित्व ने युगीन क्रान्ति को जन्म दिया, तथाकथित वैदिक यज्ञों की हिंसा के विरुद्ध जनमानस जागृत हुआ। स्पृश्यास्पृश्य, छुआछूत तथा जाति के अभिमान को दी गई बुद्ध की चुनौती का परिणाम यह हुआ कि जन सामान्य के अन्दर भगवान् बुद्ध को अपूर्व लोकप्रियता प्राप्त हुई। लाखों लोगों ने बौद्ध धर्म को अपना लिया।

यदि उस समय ऋषि दयानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक धर्म का स्वरूप होता तो बुद्ध को क्रान्ति करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। ऋषि दयानन्द ने वेद के प्रमाणों से ही सिद्ध कर दिया है कि वर्ण का आधार गुण-कर्म-स्वभाव है, जन्म नहीं। साथ ही वेद प्रतिपादित यज्ञ में किसी भी प्रकार की हिंसा का अनुमोदन नहीं किया गया है। स्वामी दयानन्द के इस उद्‌घोष को उनके ग्रन्थों- '**ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका**', **सत्यार्थप्रकाश तथा संस्कारविधि** आदि में देख सकते हैं।

अब हम प्रसङ्गतः तथागत गौतम बुद्ध के कुछ उन वचनों को उद्‌धृत करते हैं, जो हृदय को छू लेते हैं और जिनके कारण सम्पूर्ण संसार में भगवान् बुद्ध को लोकोत्तर प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

अहिंसा परम धर्म-

अन्नदा बलदा चेता वण्णदा सुखदा तथा।
एतमत्थवसं ञत्वा नास्सु गावो हनिंसु ते।।
न पादा न विसाणेन नास्सु हिंसन्ति केन चि।
गावो एळ्क समाना सोरता कुम्भ दूहना।।
ता विसाणे गहेत्वान राजा सत्थेन घातयि।।

अर्थात्- वे प्राचीन ब्राह्मण अन्न, बल, कान्ति और सुख को देने वाली गौ की हिंसा कभी नहीं करते थे, परन्तु घड़ों दूध देनेवाली, पैर और सींग से न मारने वाली, बकरी के समान सीधी गाय को आज ब्राह्मण 'गोमेध' यज्ञ में मारते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वास्तविक पूर्व वैदिक युग में यज्ञों में गोवध नहीं होता था। 'ब्राह्मण धम्मिक सुत्त' में संगृहीत गौतम बुद्ध के इन वचनों से यह भली-भाँति प्रकट है कि पूर्वकाल में गौ आदि पशुओं का यज्ञ में वध नहीं होता था।

जाति ब्राह्मण की निन्दा

'**वसल सुत्त**' में जन्मानुसार वर्ण-व्यवस्था का खण्डन करते हुए भगवान् बुद्ध कहते हैं-

''न जच्चा वसलो होति, न जच्चा होती ब्राह्मणो।
कम्मना वसलो होति, कम्मना होति ब्राह्मणो।।''

अर्थात् जन्म से कोई वृषल या शूद्र नहीं होता और न जन्म से कोई ब्राह्मण होता है। कर्म से ही शूद्र और कर्म से ही ब्राह्मण होता है।

''न जटाहि न गोत्तेहि, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चं च धम्मो च, सो सुची सो च ब्राह्मणो।''

'**धम्मपदम्**' के '**ब्राह्मण वग्ग**' में संकलित इस बुद्ध के वचन का तात्पर्य है कि'' न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य और धर्म है वही शुचि (पवित्र) है और वही ब्राह्मण है।''

भगवान् गौतम बुद्ध ने **अष्टांगिक मार्ग** और **आर्य सत्य** का भी अपने प्रवचनों में बहुधा उल्लेख किया है। भगवान् बुद्ध की दृष्टि में सच्चा आर्य वही है जो-

''न तेन अरियो होति, येन पाणानि हिंसति।
अहिंसा सब पाणानं, अरियोति पवुच्चति।।''

[धम्मठ वग्गो (धम्मपद) २७०]

अर्थात् प्राणियों की हिंसा करने से कोई आर्य नहीं कहलाता। सर्व प्राणियों की अहिंसा से ही मनुष्य आर्य कहला सकता है।

इसलिये हम सुप्रसिद्ध विद्वान् 'मोनियर विलियम्स' के इस कथन से अपनी सम्पूर्ण सहमति प्रकट करते हैं जिसमें यह कहा गया है कि-

''बुद्ध का उद्देश्य हिन्दू धर्म का नाश करना नहीं किन्तु अशुद्धियों से पवित्र करके प्राचीन शुद्ध रूप में उसका पुनरुद्धार करना था।''

''Hinduism, therefore, was contained in the Dharma of Buddhism and the great object of Gautam's advent was not to uproot the old religion but to purify it from error and restore it.'' ('Buddhism' by Monier Williams. p. 206)

संस्था-समाचार

आर्यसमाज स्थापना दिवस- चैत्र शुक्ल प्रतिपदा नव संवत्सर के अवसर पर परोपकारिणी सभा द्वारा संचालित ऋषि उद्यान में वासन्तीय नवसस्येष्टि पर्व एवं आर्यसमाज का स्थापना दिवस पूर्ण उत्साह से मनाया गया। इस अवसर पर रविवार १८ मार्च को प्रात: काल विशेष यज्ञ के पश्चात् ब्र. उत्तम ने भजन सुनाया। परोपकारिणी सभा के युवा सभासद् डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार ने आर्यसमाज की स्थापना और इसके महत्त्व पर व्याख्यान दिया।

बलिदान दिवस- २३ मार्च शुक्रवार को देशभक्त क्रान्तिकारी भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव का बलिदान दिवस मनाया गया। इस अवसर पर २३, २४ एवं २५ मार्च को तीनों दिन सायंकालीन यज्ञ के पश्चात् देशभक्ति गीतों एवं व्याख्यानों का आयोजन किया गया। शहीदों को श्रद्धांजलि देते हुए ब्र. उत्तम ने देशभक्ति गीत सुनाया। स्वामी सोमानन्द, कवि डॉ. नन्दकिशोर काबरा, ब्र. मनोजित्, ब्र. उन्नीकृष्णन्, ब्र. ज्ञानेन्द्र, ब्र. शिवनाथ आर्य 'वैदिक', ब्र. प्रदीप, ब्र. भास्कर, ब्र. मनोज, ब्र. प्रणव एवं श्रीमती विजय शर्मा ने अपने-अपने विचार रखे। कार्यक्रम का संचालन ब्र. शिवनाथ एवं ब्र. भूदेव जी ने किया।

रामनवमी पर्व- रविवार २५ मार्च को प्रात:काल विशेष यज्ञ के पश्चात् ब्र. उत्तम ने भजन सुनाया एवं आचार्य सत्येन्द्र आर्य ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के जीवन से सम्बन्धित प्रेरक घटनाओं का वर्णन किया।

नामकरण संस्कार, जन्मदिन पर यज्ञ- ऋषि उद्यान की यज्ञशाला में रविवार १८ मार्च को आर्यवीर दल अजमेर के जिला मंत्री श्री विश्वास पारीक की पुत्री का नामकरण संस्कार आचार्य सत्यजित् के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ। संस्कार में गणमान्य लोगों के साथ अजमेर के जिलाधीश श्री गौरव गोयल सपरिवार सम्मिलित हुए। १९ मार्च को हर्षित चौहान सुपौत्र श्री बाबूराव चौहान सुपुत्र श्री हरिप्रसाद चौहान के जन्मदिन पर अतिथि-यज्ञ के होता बने। दोनों यजमानों को परोपकारिणी सभा की ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।

अतिथि- अजमेर नगर में केसरगंज स्थित ऐतिहासिक महर्षि दयानन्द आश्रम, अनुसन्धान भवन एवं वैदिक पुस्तकालय, ऋषि निर्वाण स्थल-भिनाय कोठी, मलूसर स्थित महर्षि का दाह संस्कार स्थल, ऋषि उद्यान स्थित महर्षि दयानन्द सरस्वती संग्रहालय, महर्षि दयानन्द आर्ष गुरुकुल आदि देखने, संन्यासियों-विद्वानों से मिलकर शंका-समाधान करने, उपदेश ग्रहण करने, दैनिक यज्ञ एवं प्रवचन से लाभ लेने, पुष्कर आदि पर्यटन स्थलों में भ्रमण एवं आर्यसमाज के प्रचार के लिए देश-विदेश के संन्यासी, वानप्रस्थी, विद्वान्, ब्रह्चारी, आर्यवीर, आर्यसमाज के कार्यकर्त्ता, गृहस्थ स्त्री-पुरुष-बच्चे, विद्यालय-महाविद्यालय के छात्र-छात्रायें एवं शोध करने वाले निरन्तर आते रहते हैं। सभी आगन्तुकों के निवास एवं नाश्ता, भोजन, दूध आदि की समुचित व्यवस्था ऋषि उद्यान में उपलब्ध रहती है। पिछले १५ दिनों में बारां, सांभर, नागौर, चित्तौड़गढ़, अलवर, जयपुर, गोवा, कालका, दिल्ली, नागपुर, अहमदाबाद, डीसा, रोहतक आदि स्थानों से ३२ अतिथि आये।

दैनिक प्रवचन-प्रात:कालीन सत्संग में स्वामी विष्वङ् परिव्राजक ने प्राणायाम, धारणा, ध्यान के विषय में विस्तार से समझाया। आचार्य सत्येन्द्र आर्य ने दैनिक वेद स्वाध्याय के अन्तर्गत पढ़े जाने वाले वेदमन्त्रों का अर्थ बताया। सोमवार से शुक्रवार तक सायंकालीन सत्संग में आचार्य सत्येन्द्र आर्य द्वारा ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का पाठ एवं व्याख्यान हुआ। शनिवार सायंकालीन प्रवचन में ब्र. उत्तम ने भजन सुनाया एवं डॉ. नन्दकिशोर काबरा जी ने कविता पाठ किया। रविवार प्रात:कालीन सत्संग में ब्र. उत्तम ने भजन सुनाया।

आर्यजगत् के समाचार

१. सम्मानित- आर्यसमाज काकड़वाड़ी, मुम्बई द्वारा आयोजित १४४वें आर्यसमाज स्थापना दिवस समारोह पर दि. १८ मार्च २०१८ को मुम्बई नगर तथा उपनगरों के सभी पदाधिकारी एवं सदस्यों की उपस्थिति में आचार्य बृहस्पति शास्त्री, गुरुकुल नवप्रभात वैदिक विद्यापीठ-ओड़िशा को आर्यप्रतिनिधि सभा मुम्बई द्वारा 'आर्य वैदिक विद्वान् सम्मान' से सम्मानित किया गया। सम्मानस्वरूप अभिनन्दन पत्रम्, श्रीफल एवं पच्चीस हजार रु. का चैक प्रदान किया गया। गुरुकुल नवप्रभात वैदिक विद्यापीठ, ओड़िशा ने मुम्बई की सभी समाजों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित की।

२. महायज्ञ सम्पन्न- आर्यसमाज कुण्डा, प्रतापगढ़, उ.प्र. के सदस्य डॉ. श्यामलाल आर्य द्वारा १३ से २२ मार्च २०१८ तक ऋग्वेद पारायण यज्ञ का आयोजन उनके निवास स्थान ग्राम कैमा में किया गया। यज्ञ की ब्रह्मा 'पाणिनि कन्या महाविद्यालय वाराणसी' की आचार्या डॉ. प्रीति विमर्शिनी व वेदपाठी ब्रह्मचारिणियों ने उत्सवपूर्ण वातावरण में सकुशल यज्ञ सम्पन्न किया। प्रतिदिन प्रातः सायं यज्ञ के उपरान्त ऋग्वेद मन्त्रों पर आधारित विभिन्न विषयों पर विस्तृत व्याख्यान एवं भजनोपदेशक पं. रवीन्द्र शास्त्री-कानपुर ने अपने भजनों के माध्यम से समाज में फैले अन्धविश्वास व पाखण्डों का तर्कपूर्ण खण्डन किया।

३. सम्मान- लातूर महाराष्ट्र आर्यजगत् तथा हिन्दी, मराठी भाषा के साहित्यकार डॉ. चन्द्रशेखर लोखण्डे और पत्नी सौ. सन्ध्या लोखण्डे का महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित मुम्बई काकड़वाड़ी (गिरगाँव) में दि. १८ मार्च २०१८ (युगादि पर्व) को सपत्नीक सम्मानित किया गया। इस अवसर पर मेघालय के राज्यपाल श्री गंगाराम उपस्थित थे। १४४ वर्ष पूर्व १८७५ ई. में इसी दिन स्वामी जी ने गिरगाँव काकड़वाड़ी में आर्यसमाज की स्थापना की थी। डॉ. लोखण्डे ने आर्यसमाज और उसके माध्यम से अनेकों राष्ट्रीय एवं सामाजिक कार्य किये हैं। उन्होंने महाराष्ट्र, कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश में लगभग ५०० ग्रामों में वैदिक धर्म का प्रचार-प्रसार किया है। लेखन के द्वारा समाज का प्रबोधन करते हुए उन्होंने अब तक २१ पुस्तकें लिखी हैं।

४. वार्षिकोत्सव व पुरस्कार समारोह- २६ से २८ जनवरी २०१८ तक आर्यसमाज सान्ताक्रुज का ७४वाँ वार्षिकोत्सव एवं पुरस्कार समारोह आर्यसमाज के विशाल सभागृह में मनाया गया। इस अवसर पर ऋग्वेद के मन्त्रोच्चारण के साथ यज्ञ आयोजित किया गया, जिसके ब्रह्मा आचार्य पं. वेदप्रकाश श्रोत्रिय-नई दिल्ली थे। इस कार्यक्रम में आर्यसमाज के विद्वानों को भी सम्मानित किया गया।

वर-वधू चयन सेवा का परिचय मिलन सम्मेलन हुआ जिसमें अनेक युवक-युवतियों ने भाग लिया। इसका संचालन श्रीमती प्रेमा मिस्त्री व श्रीमती सुधा कुमार ने किया।

५. वेद प्रचार- श्रीविजयनगर की यादव कॉलोनी, जि. श्रीगंगानगर, राज. में दि. १३ से १५ मार्च २०१८ तक वेद प्रचार हेतु हवन, यज्ञ व भजन-प्रवचन का आयोजन किया गया। श्रीविजयनगर मण्डी में शत-प्रतिशत पौराणिक व अन्य मत-मतान्तरों के परिवार रहते हैं, इन लोगों के बीच में इन्हीं लोगों के सहयोग से वेद-प्रचार का प्रथम बार आयोजन बड़ी धूमधाम के साथ सम्पन्न हुआ।

६. शिविर- सार्वदेशिक आर्य वीरांगना दल के तत्त्वावधान में इस वर्ष का राष्ट्रीय शिविर दि. २७ मई से ३ जून २०१८ तक इलाहाबाद, उ.प्र. में लगाया जायेगा। कृपया अधिक से अधिक वीरांगनायें शिविर में पहुँचकर इस अवसर का लाभ उठायें। सम्पर्क- ०९८१०७०२७६०

चुनाव समाचार

७. आर्यसमाज महर्षि दयानन्द मार्ग, रायपुर दरवाजा बाहर, अहमदाबाद, गुजरात के चुनाव में **प्रधान**- श्री कमलेशकुमार शास्त्री, **मन्त्री**- श्रीमती शशिबहन कंसारा, **कोषाध्यक्ष**- श्री शशिकान्तभाई आर्य को चुना गया।

८. आर्यसमाज बड़ा बाजार, कोलकाता के चुनाव में **प्रधान**- श्री दीनदयाल गुप्ता, **मन्त्री**- श्री आनन्द देव आर्य, **कोषाध्यक्ष**- श्री सज्जन बिन्दल को चुना गया।

शोक समाचार

९. आर्यसमाज पंचवटी, नासिक, महाराष्ट्र के संस्थापक सदस्यों में से एक **स्व. श्रीमती शकुन्तला भाटिया** का १७ मार्च २०१८ को ७६ वर्ष की आयु में निधन हो गया। उनका अन्तिम संस्कार पूर्ण वैदिक विधि से वेदमन्त्रों के साथ किया गया। उनका सहयोग आर्यसमाज को बहुत था।

१०. परोपकारिणी सभा में कार्यरत श्री दीपेश भार्गव की माताजी **श्रीमती माया भार्गव** का देहान्त दि. २६ मार्च २०१८ को हो गया, श्रीमती भार्गव महर्षि दयानन्द सरस्वती की अनन्य भक्त एवं वैदिक सिद्धान्तों को मानने वाली धार्मिक महिला थीं। उनका यज्ञ एवं सन्ध्या का कार्यक्रम निरन्तर गत ६० वर्षों से चल रहा था, आप महर्षि निर्वाण स्थली भिनाय कोठी के अन्तर्गत चलने वाली महिला आर्यसमाज की भी सदस्या रहीं। दाह संस्कार पूर्ण वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। आपके ४ सुयोग्य पुत्र एवं १ पुत्री है।

परोपकारिणी सभा परिवार परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता है कि इस दुःखद घड़ी में भार्गव परिवार को धैर्य व सामर्थ्य प्रदान करें।

जन्म

१९ अप्रैल १८६४

मृत्यु

१५ नवम्बर १९३८

महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुयायी, शिक्षाविद्, समाजसेवी एवं दयानन्द ऐंग्लो वैदिक (डी.ए.वी.) के महत्त्वपूर्ण स्तम्भ

महात्मा हंसराज

सम्बन्धित लेख पृष्ठ सं. ३० पर

आर जे/ए जे/80/2018-2020 तक   प्रेषण : १५ अप्रैल , २०१८   आर.एन.आई. ३९५९/५९

जन्म
फाल्गुन शुक्ल १२ संवत् १९३३ वि.

मृत्यु
७ अप्रैल १९३२

'परोपकारी' पत्रिका के पूर्व सम्पादक, प्रसिद्ध साहित्यकार, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद (प्रथम राष्ट्रपति) के लेखन गुरु एवं हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठित 'मंगला प्रसाद पुरस्कार' से सर्वप्रथम सम्मानित

पं. पद्मसिंह शर्मा

सम्बन्धित लेख पृष्ठ सं. ३६ पर

प्रेषकः
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में